महाभाव – दिनमणि श्रीराधाबाबा

(प्रथम खण्ड)

पृष्ठ संख्या 301-400 तक

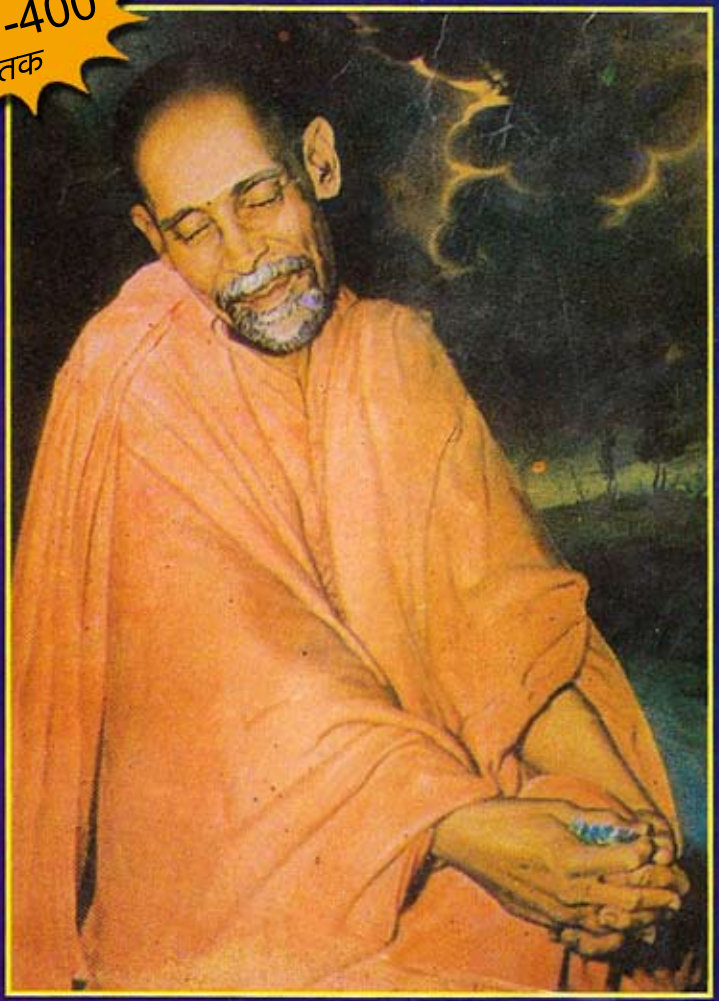

साधु कृष्णप्रेम

वर्णन है तो वह ऐसा ही है मानो कोई गूँगा वाक्य-रहित, शब्द-रहित गूँगी भाषा में अपने मीठे-स्वाद का वर्णन करे। हाँ, यह अवश्य है कि इस वर्णन पर विश्वास करके जो साधना करेगा, उसें उस छवि के दर्शन अवश्य हो सकते हैं।

श्री प्रिया-प्रियतम के चिद्विलास का सागर सीमाविहीन है। उस सागर का आवर्त अनोखा है, अचिन्त्य है।

पू. गुरुदेव को श्रीकृष्ण-स्वरूपिणी, श्रीयमुनामहारानी का रस-प्रवाहिणी नदी के रूप में भी चिन्मय व्रज में दर्शन होता था और सखी रूप में जब वे उनसे मूर्त्त, सदेह भी प्रकट होने की प्रार्थना करते, वे प्रकट हो जाती थीं।

वे जब भी पू० गुरुदेव के सम्मुख सदेह प्रकट होतीं तो हाथों में कमलों की माला लिये होतीं। वह माला वे पू० गुरुदेव के भावदेह को समर्पित कर देतीं और उस माला को पू० गुरुदेव अपने भाव देह के सम्मुख ज्यों ही श्रीकृष्ण प्रकट होते, वन में गौचारण कर उनके निवास में आते, पहनाया करती थीं। यह क्रम दो-तीन वर्ष चला है। पू० गुरुदेव कहा करते थे कि श्रीयमुनाजी ने ही अनुमति देकर मुझे उनके तट के निकटवर्ती एक कुंज में रख दिया था जिसमें मैं तबतक रही जबतक श्रीकृष्ण ने मुझे भगवती राधारानी से मिला नहीं दिया। उसके पश्चात् तो मैं राधारानी के संग ही रहती थी। जब तक पू० गुरुदेव को श्रीराधारानी का प्यार नहीं मिला वे भगवती यमुना एवं भगवती तुलसी की कृपा पर ही अवलम्बित रहे।

ये सभी बातें पू० गुरुदेव के भावदेह की है। पू० गुरुदेव उसका शास्त्रीय आधार खोजना चाहते थे। पू० गुरुदेव का मन ऐसा था कि जब तक उन्हें अपने भाव का शास्त्रीय आधार नहीं मिला, वे उसकी सत्यता पर ही सन्देह करने लगते। वे सोचते थे कहीं यह मेरे सम्मुख प्रकट होने वाला दृश्य मेरी मनोजनित कोई सात्विक वासना का परिणाम-मात्र तो नहीं है। इस विचार से उनका विश्वास उन भावनाजन्य दृश्यों से हिल जाता था।

एक दिवस पू० गुरुदेव श्रीपोद्दारमहाराज के पास गये थे। वे प्रतिदिन ही उनके दर्शनार्थ दिन में एक बार उनके पास जाया करते थे। पू० गुरुदेव ने पूर्वाश्रम के अपने बड़े भाई श्रीदेवदत्तजी मिश्र से सभी दर्शनशास्त्रों का, एवं ब्रह्मसूत्रों का विधिवत् अध्ययन तो किया था, परन्तु पुराणों का अध्ययन वे नहीं कर पाये थे।

सन्यास लेने के उपरान्त उन्होंने अपनी मां से अन्तिम मिलन के लिये जाने पर ग्राम-प्रवास में श्रीदेवदत्तजी द्वारा भागवत-सप्ताह अवश्य सुना था। परन्तु उसमें मात्र रासलीला का वर्णन था, कुञ्ज-निकुञ्ज लीलाओं का कहीं कोई वर्णन नहीं था। अत: पू० गुरुदेव को अपनी निकुञ्ज-भावना का अब तक कोई शास्त्रीय आधार समझ में नहीं आ रहा था। जब पू० गुरुदेव श्रीपोद्दारमहाराज के दर्शनार्थ उनके पास गये तो वे पद्मपुराण देख रहे थे। उन दिनों गीताप्रेस से संक्षिप्त पद्मपुराण छापे जाने की बात चल रही थी।

पू० पोद्दारमहाराज पू० गुरुदेव को सम्बोधित कर कहने लगे- 'स्वामीजी ! देखिये, भगवान् श्रीशिव के द्वारा प्रश्न करने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने स्वरूप-तत्व का यहाँ पद्मपुराण में कैसा सुन्दर वर्णन किया है ? भगवान् समझाते हैं - कि मैं किस प्रकार सगुण हूँ और किस प्रकार निर्गुण हूँ। इस वर्णन के अनुसार यह अनुभव होता है कि अद्वैत ही लीलाद्वैत के रूप में किस शोभा से लीलायमान हो रहा है। भगवती श्रीराधा श्रीकृष्ण से अभिन्न हैं और एक ही तत्व लीला के लिये दो रूपों में लीलायमान है। श्रीराधा श्रीकृष्ण से भिन्न कोई तत्व होतीं तो यह बात नहीं रहती। "रसो वै स:" रस वही है। रस और रस वाला दो पृथक्-पृथक् सर्वथा नहीं है।'

'भगवान् सगुण नहीं है क्योंकि वे प्राकृत गुणयुक्त नहीं हैं, वे साकार भी नहीं हैं क्योंकि वे प्राकृत आकार से युक्त नहीं हैं; उनके प्रत्येक अंग से प्रत्येक कार्य संभव हैं क्योंकि उनके प्रत्येक अंग सच्चिन्मय हैं, इस तत्व को न समझने से ही तो नासमझीयुक्त विनोद होते हैं।'

श्रीपोद्दार महाराज कह रहे थे -- 'स्वामीजी ! प्रेम निर्गुण तत्व में ही होता है, क्योंकि प्रेम स्वयं निर्गुण है, गुणों को लेकर प्रेम होना प्रेम है ही नहीं। क्योंकि वह तो गुणों का ही आकर्षण है।'

इसके पश्चात् श्रीपोद्दारमहाराज ने पू० गुरुदेव को पद्मपुराण का अंश पढ़ने को दिया। पू० गुरुदेव पद्मपुराण के पातालखण्ड को अपनी कुटिया पर ले आये। वे पातालखण्ड पढ़ने लगे। इसमें तीन इतिहास हैं :-- १. भगवान् व्यासदेव का, २. भगवान् शंकर का और तीसरा श्रीशंकरपार्वती-संवाद है।

इन तीनों इतिहासों का यहाँ संक्षिप्त रूप दिया जा रहा है।

पहला इतिहास इस प्रकार है। श्रीव्यासदेव ने एक बार हजारों वर्ष घोर तपस्या की। श्रीकृष्ण के प्रसन्न होने पर उन्होंने कहा -- "हे मधुसूदन ! मैं आपके उस यथार्थ स्वरूप को तत्व से जानना चाहता हूँ जो जगत् का पालक

एवं प्रकाशक है । आपका अद्‌भुत रूप मेरे सम्मुख प्रकट कीजिये और उसे साक्षात् मुझे आँखों से दिखाइये -- मेरी यही प्रार्थना है।"

त्वामहं द्रष्टुमिच्छामि चक्षुर्भ्यां मधुसूदन ।
यत् तत् सत्यं परं ब्रह्म जगज्ज्योतिर्जगत्पतिः।
वदन्ति वेद शिरसस्चाक्षुषं नाथ मेऽद्‌भुतम् ।।(पदम्०पातालखण्ड)

श्री भगवान् ने कहा -- "महर्षे ! मेरे विषय में लोगों की भिन्न-भिन्न धारणायें हैं। कोई मुझे प्रकृति कहते हैं, कोई पुरुष कोई ईश्वर एवं कोई धर्म। कोई उभय-पद मोक्ष। कोई केवल सत्तास्वरूप भाव मानते हैं। अनेक मुझे परम कल्याणस्वरूप सदाशिव मानते हैं।"

"मुझे इसी प्रकार अनेक वेदान्त-प्रतिपादित अद्वितीय, सनातन ब्रह्म समझते हैं - परन्तु जो यथार्थ में निर्विकार सत्तास्वरूप है, सच्चिदानन्द जिसका विग्रह है और वेदों में जिसका रहस्य छुपा है अपना वह पारमार्थिक स्वरूप मैं आज तुम्हारे सम्मुख प्रकट करता हूँ।"

भगवान् के इतना कहते ही श्रीव्यासजी को एक बालक के दर्शन हुए :- जिसके शरीर की कान्ति नीलमेघ के समान श्यामवर्ण थी, और वह गोपकन्याओं तथा ग्वालबालों से घिरा हँस रहा था। वे भगवान् श्यामसुन्दर थे जो पीतवस्त्र धारण किये कदम्ब की जड़ पर बैठे थे। उनकी परम अद्‌भुत झाँकी थी। उनके साथ ही नूतन पल्लवों से अलंकृत वृन्दावन नामक वन भी दृष्टिगोचर हुआ। इसके पश्चात् नीलकमल की आभा धारण करनेवाली कलिन्दकन्या यमुना के दर्शन हुए। फिर गोवर्धनपर्वत पर दृष्टि पड़ी। गोपाल श्रीकृष्ण रमणियों के साथ बैठकर बड़ी प्रसन्नता के साथ वेणु बजा रहे थे। उनके शरीर पर अनेक अलंकार थे। उनका दर्शन कर श्रीव्यासजी को बहुत ही हर्ष हुआ। फिर भगवान् श्रीव्यासजी से कहने लगे -- "मुने ! तुमने जो इस दिव्य सनातन रूप का दर्शन किया है, यही मेरा निष्कल, निष्क्रिय, शान्त, और सच्चिदानन्दपूर्ण विग्रह है। इस कमललोचन स्वरूप से बढ़कर दूसरा कोई उत्कृष्ट तत्व नहीं है। वेद इसी स्वरूप का वर्णन करते हैं। यही रूप सर्वकारणों का कारण है। यही सत्य, परमानन्दस्वरूप चिदानन्दघन सनातन शिवतत्व है। मेरी यह मथुरापुरी अनित्य नहीं है। यह मेरा नित्य-लोक है। ये वृन्दावन, यह यमुना, ये गोपकन्यायें, ये ग्वालबाल, सभी नित्य हैं। इसमें संशय

मत करना। पृथ्वी में जो मेरा अवतार है वह भी नित्य है। मैं ही एकमेव सर्वज्ञ, परात्पर, सर्वकाम, सर्वेश्वर, सर्वानन्दमय, परमेश्वर हूँ। मुझ में ही यह सारा विश्व, जो मेरी माया, विलासमात्र है, प्रतीत हो रहा है।"

दूसरा इतिहास भगवान् शिवजी नारदजी को कह रहे हैं :-- "मैने भगवान् से एक बार यह वरदान माँगा --

यद्रूपं ते कृपासिन्धो परमानन्ददायकम्।
सर्वानन्दाश्रयं नित्यं मूर्तिमत् सर्वतोऽधिकम्।
निर्गुणं निष्क्रियं शान्तं यद्ब्रह्मेति विदुर्बुधाः।
तदहं द्रष्टुमिच्छामि चक्षुर्भ्यां परमेश्वर ।।

"कृपासिन्धो ! आपका जो परमानन्ददायक, समग्र आनन्दों का आश्रय, नित्य मनोहररूपधारी, सबसे श्रेष्ठ, निर्गुण, निष्क्रिय, और शान्त रूप है जिसे विद्वान लोग ब्रह्म कहते हैं, उसको मैं अपने नेत्रों से देखना चाहता हूँ।"

इस पर भगवान् ने कहा -- "तुम मेरे लीलाधाम वृन्दावन में चले जाओ, जो यमुना के पश्चिम तट पर है। वहाँ तुम्हें मेरे दर्शन होंगे।"

मेरे वहाँ जाने पर मुझे सम्पूर्ण देवेश्वरों के भी ईश्वर श्रीकृष्ण के दर्शन हुए। ये किशोरावस्था से युक्त कमनीय गोपवेष धारण किये अपनी प्रिया श्रीराधा के कंधे पर बायाँ हाथ रखकर खड़े थे। उनकी वह झाँकी बड़ी ही मनोहर जान पड़ती थी। चारों ओर गोपियों का समुदाय था। मध्य में भगवान् खड़े हुए श्रीराधाजी को हँसाते हुए स्वयं भी हँस रहे थे। उनका श्रीविग्रह सजल-श्याम-मेघ के समान वर्णवाला था। वह समग्र कल्याणमय गुणों का धाम था। श्रीकृष्ण मुझे देखकर हँसे। उनकी वाणी में अमृत भरा था। वे मुझसे बोले :-- "रुद्र ! तुम्हारा मनोरथ जानकर आज मैने तुम्हें दर्शन दिये हैं। इस समय मेरे जिस अलौकिक रूप को तुम देख रहे हो, यह निर्मल प्रेम का पुंज है। इसके रूप में सत् , चिद्, आनन्द ही मूर्त्तिमान् हुए हैं। उपनिषदों के समूह मेरे इस स्वरूप को निराकार, निर्गुण, व्यापक, निष्क्रिय, और परात्पर बताते हैं। मेरे दिव्य गुणों का अन्त नहीं है और कोई भी उन गुणों को सिद्ध नहीं कर सकता। अतः वेदान्त शास्त्र मुझ ईश्वर को 'निर्गुण' बतलाता है। महेश्वर ! मेरा यह रूप चर्मचक्षुओं से नहीं देखा जा सकता, अतः सम्पूर्ण वेद मुझे अरूप 'निराकार' कहते हैं। मैं अपने चैतन्य अंश से सर्वत्र व्यापक हूँ,

इसीलिये विद्वान लोग मुझे 'ब्रह्म' के नाम से पुकारते हैं। मैं इस प्रपंच का कर्ता नहीं हूँ, इसीलिये शास्त्र मुझे 'निष्क्रिय' बताते हैं। शिव ! मेरे अंश ही मायामय गुणों के द्वारा सृष्टि संहार आदि कार्य करते हैं, मैं स्वयं कुछ भी नहीं करता। हे महादेव ! मैं तो इन गोपियों के प्रेम में विह्वल होकर न तो कोई दूसरी क्रिया जानता हूँ, न मुझे अपने आपका ही भान रहता है। ये मेरी प्रिया राधिका हैं, इन्हें परादेवता समझो। मैं इनके प्रेम के वशीभूत होकर सदा इन्हीं के साथ विचरण करता हूँ। इनके आगे-पीछे, अगल-बगल में जो लाखों सखियाँ हैं, वे सबकी सब नित्य हैं। जैसा मेरा विग्रह है, वैसे ही इनका भी सच्चिन्मय विग्रह है। मेरे सखा, माता-पिता, गोप-गौएं तथा वृन्दावन - ये सब भी मेरे स्वरूपभूत नित्य चिन्मय हैं। इन सबका स्वरूप सच्चिदानन्द रसमय ही है। मेरे इस वृन्दावन का नाम आनन्दकन्द समझो। इसमें प्रवेश करने मात्र से मनुष्य को पुनः संसार में जन्म नहीं लेना पड़ता। मैं वृन्दावन छोड़कर कहीं नहीं जाता। अपनी प्रिया के साथ यहीं निवास करता हूँ। रुद्र ! तुम्हारे मन में जिस जिस बात को जानने की इच्छा थी वह सब मैंने बता दी।'

तब भगवान् रुद्र ने पूछा -- 'प्रभो ! आपके इस स्वरूप की प्राप्ति कैसे हो सकती है ? इसका उपाय मुझे बताइये।' भगवान् ने कहा -- 'रुद्र ! तुमने बहुत अच्छी बात पूछी है। किन्तु यह विषय अत्यन्त रहस्य का है। इसे यत्नपूर्वक गुप्त रखने की आवश्यकता है। देवेश्वर ! जो दूसरे उपायों का भरोसा छोड़कर एकबार हम दोनों की शरण आ जाता है और गोपीभाव से मेरी उपासना करता है, वही मुझे पा सकता है। जो एक बार भी हम दोनों की शरण आ जाता है, अथवा अकेली मेरी इस प्रिया राधा की अनन्य भाव से उपासना करता है, वह मुझे अवश्य प्राप्त करता है। इसलिये सर्वथा प्रयत्न करके मेरी इस प्रिया की शरण ग्रहण करनी चाहिये।'

"रुद्र ! मेरी प्रिया का आश्रय लेकर तुम भी मुझे अपने वश म कर सकते हो। यह बहुत ही बड़े रहस्य की बात है। अब तुम मेरी प्रिया की शरण लो और युगल मंत्र का जप करते हुए मेरे धाम में निवास करो।"

इसी प्रसंग में भगवान् शंकर नारदजी से कहते हैं -- 'श्रीकृष्णप्रिया राधा अपनी चैतन्यादि अन्तरंग विभूतियों से इस प्रपंच का गोपन अर्थात् संरक्षण करती हैं। अतः उन्हें 'गोपी' कहते हैं। वे श्रीकृष्ण की आराधना में तन्मय रहती हैं अतः 'राधिका' कहलाती हैं। श्रीकृष्णमयी होने के नाते वे परादेवता

हैं। वे पूर्णतया लक्ष्मी-स्वरूपा हैं। श्रीकृष्ण के आह्लाद का मूर्त्तिमान्-स्वरूप होने के नाते मनीषीजन उन्हें 'ह्लादिनी शक्ति' कहते हैं।"

"श्रीराधा साक्षात् महालक्ष्मी हैं और श्रीकृष्ण नारायण हैं। इनमें थोड़ा-सा भी भेद नहीं है। श्रीराधा दुर्गा हैं, तो श्रीकृष्ण रुद्र हैं। वे सावित्री हैं और श्रीकृष्ण ब्रह्मा हैं। इन दोनों के बिना किसी भी वस्तु की सत्ता ही नहीं है। जड़-चेतनमय सारा संसार ही श्रीराधा-कृष्णमय है। सब मात्र इन्हीं की विभूति हैं।"

"तीनों लोक में पृथ्वी सर्वश्रेष्ठ है, इसमें जम्बूद्वीप, फिर इसमें भारतवर्ष, फिर इसमें मथुरापुरी, मथुरापुरी में वृन्दावन, फिर उसमें गोपीजन, गोपीजनों में राधा की अन्तरंग सखियाँ, उनमें श्रीराधा सर्वश्रेष्ठ हैं।"

तीसरे प्रसंग में भगवती पार्वती के पूछने पर भगवान् शंकर श्रीकृष्ण के अंगों का वर्णन करते हैं तथा उनके नख-शिख-शोभा-श्रृंगार का वर्णन करते हुए उनके महत्व का विवेचन करते हुए कहते हैं :-

'केचिद्वदन्ति तस्यांशं ब्रह्मचिद्रूपमद्वयम्।
तदंशांशं महाविष्णुं प्रवदन्ति मनीषिणः।।
योगीन्द्रैः सनकाद्यैश्च तदेव हृदि चिन्त्यते।
तिर्यग्ग्रीवजितानन्तकोटिकन्दर्पसुन्दरम्।।
सापांगेक्षणसस्मेरकोटिमन्मथसुन्दरम् ।
कुञ्चिताधरविन्यस्तवंशीमंजुकलस्वनैः।।
जगत्त्रयं मोहयन्तं मग्नं प्रेम सुधार्णवे।।

(पद्मपुराण पातालखण्ड)

'कुछ विद्वानों का कथन है कि चिद्रूप अद्वितीय ब्रह्म उनका (श्रीकृष्ण का) अंश है। अनेक मनीषीगण महाविष्णु को उनका दशमांश कहते हैं। सनकादि योगीश्वर अपने हृदय में इनका सदा चिन्तन करते हैं। जिस समय वे टेढ़ी गर्दन करके खड़े होते हैं, उस समय अनन्तकोटि कामदेवों से भी अधिक सुन्दर दीखते हैं। वे अपनी तिरछी चितवन तथा मधुर, मन्द मुसकान द्वारा करोड़ों कामदेवों के समान सुन्दरता धारण कर अपने सिकोड़े हुए अधरों पर वंशी रखकर बजा रहे हैं और उसी मुरली की मधुर स्वरलहरी से त्रिभुवन को मोहित करते हुए सबको प्रेम सुधा सागर में निमग्न कर रहे हैं।'

देवी ! जिनके नखचन्द्र-किरणों की महिमा का भी अन्त नहीं है, उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण की महिमा के सम्बंध में मैं कुछ और बता रहा हूँ। त्रिगुणमय अनन्तकोटि ब्रह्माण्डों में जितने ब्रह्मा-विष्णु-महेश्वर हैं, सब इन श्रीकृष्ण की कला के करोड़वें-करोड़वें अंश से उत्पन्न हैं। सृष्टि-स्थिति-प्रलय की शक्ति से युक्त वे ब्रह्मादि देवता उन्हीं श्रीकृष्ण के वैभव हैं। उन श्रीकृष्ण के अंश का जो करोड़वाँ - उसके भी करोड़ अंश करने पर एक-एक अंश-कला से ऐसे असंख्य कामदेवों की उत्पत्ति होती है जो इस ब्रह्माण्ड में स्थित होकर जगत् के जीवों को मोह में डालते हैं। श्रीकृष्ण की शोभा-कान्ति के करोड़वें अंश से चन्द्रमा का आविर्भाव हुआ है। श्रीकृष्ण के प्रकाश के करोड़वें अंश से जो किरणें निकलती हैं, वे ही अनेकों सूर्य के रूप में प्रकट होती हैं, वे परमानन्द रसामृत से परिपूर्ण हैं। वे परमानन्द और परम-चैतन्यमयी हैं, उन्हीं से इस विश्व के ज्योतिर्मय जीव जीवन धारण किये हुए हैं। जो भगवान् के ही कोटि-कोटि अंश हैं। उनके चरणयुगल के नख रूपी चन्द्रकान्तमणि से निकलने वाली प्रभा को ही 'पूर्ण-ब्रह्म' बताया गया है, जो सबका कारण है और वेदों के लिये भी दुर्गम है। विश्व को मोहित करने वाला जो नाना प्रकार के पुष्पादि का सौरभ है वह सब उनके श्रीविग्रह की दिव्य सुगन्ध का करोड़वाँ हिस्सा है। इन श्रीकृष्ण की प्रिया, प्राणवल्लभा श्रीराधा हैं। वे ही आद्या-श्रीकृष्णमयी-प्रकृति हैं। इन्हीं श्रीराधिका के करोड़वें अंश से त्रिगुणात्मिका दुर्गादि देवियों की उत्पत्ति हुई है। इन श्रीराधिका के पद-रजस्पर्श से करोड़ों विष्णु उत्पन्न होते हैं।'

(पद्मपुराण पातालखण्ड)

प० पू० गुरुदेव इन शास्त्र वाक्यों को पढ़कर इतने कृतकृत्य हो गये मानो अब उन्हें कुछ भी जानना-समझना शेष नहीं है। जैसे समुद्र में डूब जाने पर ऊपर-नीचे, बाहर-भीतर, जल-ही-जल उपलब्ध होता है, उसी प्रकार पू० गुरुदेव को आगे-पीछे, ऊपर-नीचे श्रीकृष्ण-ही-श्रीकृष्ण, एवं उनका लीलासिन्धु दिखने लगा। परन्तु अभी उनके जीवन में बहुत बड़ी-बड़ी लीला तरंगें आनी शेष थीं, जिनका तो उन्हें अभी आभास ही नहीं हुआ था।

प० पू० गुरुदेव को पद्मपुराण में ही अष्टकालीन लीला का अत्यन्त सुन्दर क्रम भी प्राप्त हो गया जिसके लिये उनका मन अतिशय लालायित था। वह अष्टकालीन क्रम ही प्रारंभ में उनकी रस-साधना का प्रमुख अंग रहा है।

यहाँ पुन: एक बात उल्लेख कर देता हूँ कि पू० गुरुदेव को श्रीपोद्दारमहाराज की कृपा से भगवान् श्रीकृष्ण की रसमयी लीलायें सदा ही पहले प्रकट होती थीं और जब गुरुदेव उन प्रकट हुई लीलाओं का आधार पद्मपुराण, स्कन्दपुराण, ब्रह्माण्डपुराणादि आगम शास्त्रों में तथा रसिक व्रजभक्तों के लीलाचरित्रों के पद संग्रहों में, व्रजभक्तों की महावाणियों में ढूँढ़ते तो उन्हें वे कुछ भिन्नरूप में सही - मिल जाती थीं।

भावजगत् - अहीरनी रसमयी

पू० गुरुदेव ने अपने भाव संसार की निम्न लीला-कथा मुझे एवं भाई श्रीराधेश्याम पालड़ीवाल को सन् १९५१ ई० में सुनायी थी। भाई श्रीराधेश्याम पालड़ीवाल तो उन दिनों पू० गुरुदेव का सर्वोत्तम समर्पित शिष्य था। उस पर चाहे अति अल्पकाल के लिये ही सही, उन दिनों पू० गुरुदेव की असीम कृपा वर्षा हुई थी। उसके संग-साथ से जो लीला-प्रसंग उन दिनों सुनने को मिले, वे ही यहाँ दिये जा रहे हैं।

यहाँ जो लीलायें लिखी गयी हैं, वे सभी श्रुतियाँ हैं। पू० गुरुदेव द्रष्टा ऋषि थे, वे दृष्य देखते हुए वर्णन करते थे, और हम भाग्यवान् जीव उन्हें सुनते थे। पू० गुरुदेव द्वारा उन्हें नहीं लिखने का कठोर आदेश था। हाँ, इन लीलाओं का जो भी अंश श्रीकृष्ण स्मृति-पटल पर स्थायी रूप से अंकित कर दें, उसके अनुसार चिन्तन-साधना हम भले ही करें। एक दिवस मात्र एक छोटी सी लीला का प्रकाश मैंने श्री गुलाबचन्दजी बोथरा के सम्मुख कर दिया था, इस पर पू० गुरुदेव मुझ पर बहुत रुष्ट हुए थे। कहना इतना ही है, कि उन्हें हम परस्पर एक-दूसरे को कह भी नहीं सकते थे। पू० गुरुदेव जिसे जितना अधिकारी समझते, अपनी इन लीला-रूप-मंत्र शक्तियों का बीज ही उसके हृदय में डालते थे, और बस उस समय पूर्ण मनोयोग पूर्वक एकाग्र चित्त से हम सुनते भर रहें, यही हमसे उनकी अपेक्षा होती थी।

सन् १९५१ ई० से १९७१ ई० तक जब तक मैं सन्यस्त नहीं हो गया, सुनी हुई इन श्रुति निधियों को, मंत्र-स्वरूप, जाग्रत, अप्राकृत - लीला-प्रसंगों को यहाँ दिया जा रहा है। शुद्ध मन से श्रद्धापूर्वक साधना करने पर निश्चय ही साधनातीत वस्तु के अवतरण में ये हेतु होंगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

वाह ! क्या ही विलक्षण मेरे गुरुदेव का भाव-संसार है। जिसका आकाश प्यार है, जिसके सूर्य चन्द्र मरुद्गण, पृथ्वी, आकाश, जल, तेज एवं दिशायें सभी प्यार हैं। जिसकी उद्भिज, अण्डज, जरायुज, स्वेदज सभी सृष्टि मात्र प्यार-ही-प्यार है। जिसके ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र अर्थात् सृष्टि, पालन एवं संहारकर्त्ता भी मात्र प्यारी एवं प्यारे ही हैं।

ऐसे प्यार के देश में रसमयी बाला बने पू० गुरुदेव अपनी गोबर से लिपी-पुती वन-कुटिया में विराजित हैं। वह कुटिया जर्जरित भग्न है। पू० गुरुदेव की भावदेह इस बाला को क्या नाम दें। मञ्जुलीला नाम तो श्रीराधारानी से मिलन के पश्चात् श्रीरूपमंजरीजी ने उल्लेख किया था। इसके पहले तो पू० गुरुदेव अपने भाव-संसार में बस अनाम गोपी थे। जब उनके दृष्य पटल में **'प्रकट्यौ पूरण नेह'** पद की लीला प्रकट हुई थी, उस समय भी उन्हें किसी नाम की स्फूर्ति हुई नहीं थी। हुई होगी तो भी उन्होंने उसका प्रकाश किया नहीं। अतः उन्हें उस अवधि तक के लिये जब कि उन्हें श्रीरूपमंजरीजी के संग मंजुलीला सेवा प्राप्त होती है, रसमयी अथवा भावमयी ही नाम दिया जा सकता है। मुझे व्यक्तिगत रसमयी नाम ही उपयुक्त लगा है। अतः उनके भावदेह को इसी नाम से उच्चारित कर रहा हूँ।

रसमयी की कुटिया मात्र देखने में ही भग्न एवं जर्जरित है। वह तो विशुद्ध सत्व के सार, प्यार का उत्तुंग प्रासाद है और प्यार के प्रासादों की ऐसी ही शोभा आज से नहीं अनादि काल से है। प्यार जनशून्य, टूटे-फूटे, एकाकी वन-वृक्षों के तले ऐसे ही भग्न-गृहों में उत्पन्न होता है, पलता है और अभिवर्धित होता है। वैकुण्ठ एवं कैलाश का वैभव वहाँ तुच्छातितुच्छ प्रतीत होता है।

बाला की कुटिया के सामने का पथ दूर बहती सरिता की ओर गया है। यह पथ सरिता तक पहुँच कर सरिता के किनारे चलता दक्षिण की ओर पगडंड़ियों में परिवर्तित हो जाता है। दक्षिण पथ से ही उस सुदूर वन से होते हुए उस रसमयी बाला के प्राणवल्लभ आते हैं, नित्य ही तो आते हैं। गायें चराकर उस वन से लौटते हैं और तब वे अपने एक छाया स्वरूप से तो सखादि के संग गायें लिये सरिता के किनारे-किनारे उत्तर की ओर पथ से गोकुल की ओर बढ़ जाते हैं और वे स्वयं उसकी भग्न कुटिया की ओर चुपचाप सरक आते हैं। अहा ! वे प्यार के कैसे निर्मल क्षण होते हैं जब बाला उनके प्रथम दर्शन करती है।

अहा ! कैसी शोभा होती है उसके नीलमणि की। मानो वे श्यामलता के एक अनिर्वचनीय फल हों जो मधुर सुस्वादु रस से पूरित हो उठे हों, और उस रसमयी बाला की लोभनीय वस्तु बन गये हों। कैशोरभाव उनके अंग-प्रत्यंगों में समस्त मधुरिमा और उच्छलित आनन्द उँड़ेल रहा होता है। मानो नीलपद्म अपने हृदेश में प्रतिक्षण सृष्ट होते हुए मकरन्द एवं पराग को एकत्र कर मधुकरी (रसमयी बाला) का प्रीतिभाजन बनने जा रहा हो। अहा ! घुँघराली अलकें उनके कपोलों पर एवं ललाट के कुछ अंश पर झूलती कैसी प्यारी लगती हैं, उसे। गोखुरों से बिखरे उड़े धूलिकण अलकों की शोभा कैसी द्विगुणित कर दे रहे होते हैं। कुन्तल मण्डित मस्तक पर मयूर पिच्छ का मुकुट सदा ही सुशोभित रहता है और केशों में सुरभित वन्यप्रसून ग्रथित होते हैं। नेत्रों की मनोहर चितवन और अधरों पर व्यक्त हुए मृदु स्मित की शोभा देखते ही बनती है। वेणु के छिद्रों में जब वे स्वर भरते हैं तो बाला के प्राण छटपटाकर उसका देह छोड़कर उस नवकिशोर के चरणों में न्यौछावर हो जाते हैं।

जब उसका प्रियतम वह किशोर नीलम सामने के कदम्ब वृक्ष के नीचे खड़ा होता है तो तत्क्षण ही उसके नेत्र भ्रमर के रूप में परिणत हो उड़ चलते है। उसके नीलम के मुखारविन्द से राशि-राशि मधु की धारा प्रवाहित होती रहती है - उसके नेत्र भ्रमर उस मकरन्द रस का पान करने में निरत हो जाते हैं। दिनभर की विरहाग्नि जो उसके अन्तस्तल के प्रत्येक अंश में अलक्षित रूप से धक्-धक् जलती होती है, प्रशमित हो जाती है।

उन क्षणों की प्रतीक्षा करती बाला अपने नेत्र उस पथ में बिछाये सम्पूर्ण दिवस और रात काट देती है। आज भी उन्हीं क्षणों की प्रतीक्षा उसे है, और उसके नेत्र उस पथ में ही बिछे हैं।

उसकी कुटिया पूर्वाभिमुख है। अभी मध्याह्न है फिर भी रवि किंचित पश्चिम की ओर अग्रगामी होने के कारण उसकी कुटिया के पीछे वृक्षों की ओट में हो गया है कुटिया के बाहर सुखद छाया है। उस छाया में वह उत्तराभिमुख बैठी है। उसके प्राणाराम अवश्यमेव इसी वन में कहीं होंगे। उसके नेत्र उन्हें ढूँढ़ते भटक रहे हैं। किसी सूदूर वन के मध्य कहीं उसके प्रियतम मिल जायें सखाओं के मध्य क्रीड़ा करते। किसी वृक्ष पर बैठे, अपनी गायों को घेरते, पीताम्बर फहराते, वंशीध्वनि करते दिख जावें। उसके नेत्र प्रियतम की खोज में उसे छोड़कर भाग गये हैं। और नेत्र अकेले थोड़े गये हैं

उसकी कर्णेन्द्रियाँ भी वन पथ में ही कहीं वेणुध्वनि सुन रही होंगी, और मन तो अपने मनोहर को एक क्षण भी नहीं छोड़ पाता । मन अपने साथ उसके प्राणों को भी ले गया है। हाँ, उसे संजीवित रखने का कार्य प्रियतम की अबाध स्मृति अवश्य क्रियाशील हुई कर रही है। सारांश यही है कि प्रियतम स्मृति रूप उसके नीलम के ही प्राणों का एक अंश उसे जीवित रखे है।

उसके अपने मन एवं प्राण तो उसके पास तभी लौटेंगे जब उसके प्राणवल्लभ उसके नेत्रगोचर होंगे। और अब तो आने वाले ही होंगे। नित्य ही तो आते हैं। दक्षिण दिशा में थोड़ी दूर जो पुष्पित कदम्ब है, उसके ही नीचे वे प्रतिदिन खड़े हो जाते हैं। उनका यह प्रतिदिन का नियम है। फिर आज इसका उल्लंघन वे क्यों करेंगे ? आज भी अब तो वे आने ही वाले होंगे। ऐसा हो ही नहीं सकता कि वे नहीं आवें। इसी आशा में तो शरीर जीवन्त है उसका। उनके प्यार की ऊष्मा ही तो उसे जीवित किये हुए है। अन्यथा तो अपने प्रियतम का क्षणभर वियोग भी वह कैसे सह पावे ? उसके प्राण कभी के मिल जावें अपने प्राणप्रिय नीलम के नीलकमल जैसे चरणारविन्दों में।

परन्तु नहीं, यह देह उसके प्राणवल्लभ नीलम की प्रिया है। उन्हें उसके पास आने में, उसे देखने में सुख मिलता है, इसीलिये वह इस देह को पकड़े है। मात्र अपने प्रिय के सुख के ही लिये वह देहरूपा है, देह को धारण किये हैं।

तो बाला के प्राण चले गये हैं अपने प्राणधन को खोजने। वे भटक रहे हैं उस वृन्दा विपिन की राहों में। और आकुल प्राणों की सच्ची इच्छा जब उन्हें ढूँढने एवं पाने की होती है तो वह प्राणधन मिल ही जाता है। यद्यपि यह सर्वत्र है, सर्वव्यापक है परन्तु उसका प्राकट्य प्रेमभरी प्राणों की आकुलता से ही होता है। रसमयी बाला के प्राण अन्ततः उसे ढूँढ ही लेते हैं। उसे देखते ही रसमयी के प्राण हरे हो जाते हैं। रसमयी के नेत्र, प्राण, मन सब इस शोभा का पान करने में संलग्न है :--

कृष्णस्य विष्वक् पुरुराजिमण्डलैरभ्यानना: फुल्लदृशोवृजार्भका:
सहोपविष्टा विपिने विरेजुश्छदा यथाम्भोरुहकर्णिकाया: ॥
बैठे जो बीच कृपालु, सुन्दर सखा चहुं दिसि भ्राजहीं।
जिमि कमल मध्य सुकर्णिका सुभ पत्र चहुँदिसि छाजहीं।

मानो पद्म का एक प्रफुल्ल बीजकोश हो, इस बीज कोश के चारों ओर मंडलाकार श्रेणीबद्ध पद्म-दल हों -- इस प्रकार अपने सखा श्रीकृष्णचन्द्र को वेष्टित कर गोपशिशुओं ने आसन ग्रहण किया हुआ हैं। पहले श्रीदाम, सुबल, आदि शिशुओं की एक पंक्ति अपने सखा को घेर कर बैठ जाती है। इसके अनन्तर अपेक्षाकृत वृहत् दूसरी पंक्ति पहली को मण्डलाकार ही घेरे है। तीसरी पंति दूसरी की अपेक्षा वृहत्तर है और दूसरी को आवृत्त किये है।

वृजेन्द्रनन्दन को आवृत्त करने वाली प्रथम पंक्ति के सखा सभी वृजेन्द्र नन्दन की तरह पीत वस्त्र पहने हैं। अतः प्रथम पंक्ति पीत वर्णों के पद्म-दलों की तरह शोभा सम्पन्न है। द्वितीय पंक्ति में बैठे सभी सखा संयोगवश रक्तवर्ण के वस्त्र पहने हैं इसी प्रकार तृतीय पंक्ति में सभी सखा श्यामवर्ण के नील वस्त्र पहने हैं। इस प्रकार प्रफुल्ल पद्मकोश के निराले रंग बिरंगे सौन्दर्य का वर्णन साक्षात् वाग्वादिनी के लिये भी असंभव हो रहा है।

साथ ही एक और महती आश्चर्य है कि व्रजराज नन्दन का मुख-पद्म प्रत्येक शिशु की ओर है। प्रत्येक को यह अभ्रान्त अनुभूति है कि मेरा कन्हैया भैया सर्वथा मेरी ओर ही दृष्टि किये, स्नेह सौहार्द की अजस्र धारा बहाते हुए मेरे पार्श्व में ही अवस्थित है। ऐसी अवस्था में सबके आनन्द की थाह ही नहीं है।

जो हो रसमयी बाला प्रत्यक्ष देख रही है कि सखाओं से परिवेष्टित होकर भोजन के लिये आसन ग्रहण किये श्रीकृष्णचन्द्र यमुना पुलिन के उस वन में विराजे हैं।

आज सखाओं के भोजन के पात्र भी निराले ही हैं। कतिपय शिशुओं ने सुन्दर सौरभशाली कुसुमों के दल एकत्र किये और उन्हें संघटित कर अपने भोजन पात्र बनाये हैं।

अनेकों ने पद्म पत्रों से थाल का निर्माण किया हैं। कुछ ने वृक्ष के सुकोमल पत्रों से तो अनेकों ने वृक्ष-वल्कलों को लेकर अपनी थाली बनायी हैं।

केचित् पुष्पैर्दलैः केचित् पल्लवैरंकुरैः फलैः
शिग्भिस्त्वग्भिर्हषद्भिश्च बुभुजुः कृतभाजनाः।

कोउक पुष्प कोउ तासु दल कोउक पत्र फल माँहि
भाजन कर जेवन लगे अपर उपल चित चाँहि ।

रसमयी बाला के प्राण इस शोभा को अलक्ष्यित लक्ष्य कर रहे हैं। पू० गुरुदेव बैठे हैं मुझ देहावेशी अधम के सम्मुख, उनका गैरिक वस्त्रधारी देह है, राजस्थान के, रतनगढ़ ग्राम में श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार की हवेली में। परन्तु उनके भाव शरीर के सम्मुख विलक्षण दृश्य के रूप में उनका भावजगत् प्रकट हो रहा है। उनके नेत्र निहार रहे हैं अपने कोटि प्राण प्रियतम के विलक्षण सौन्दर्य को। पू० गुरुदेव विलक्षण योगसिद्ध पुरुष थे। उनका शरीर उन दिनों पोद्दार महाराज द्वारा सौंपे पुस्तकालय के कार्य मे रत रहता। वे राधेश्यामजी धानुका एवं अन्य लागों को यथायोग्य कार्य करने का 'राधा राधा' बोलकर अपनी स्लेट पट्टी में निर्देश देते रहते परन्तु उनके मन एवं प्राण अलक्ष्य लक्ष्य करते रहते अपने प्राण सुन्दर नीलम को। उनके प्रियतम का मधुस्यन्दी स्वर उनके कानों को निनादित करता रहता था :--

भो, भो, भो, भो उज्ज्वलनिष्का निष्कासयत भक्ष्य सामग्रीं अग्रीयाम् इति।

(श्री आनन्द वृन्दावन चम्पू।)

अहो ! समुज्ज्वल पदक धारण करने वाले मेरे बन्धुगणों ! उत्तमोत्तम भोजन सामग्री अपने छींकों से निकालो तो सही !

बस, इस सुधा पूरित याचना की देर भर थी, सभी ने अपनी सर्वोत्तम खाद्य सामग्री अपने कन्हैया भैया के सम्मुख रख दी। प्रत्येक सखा को प्रत्यक्ष अनुभव होता है कि कन्हैया भैया के सबसे अधिक निकट मैं बैठा हूँ, सर्वथा सम्मुख बैठा हूँ और मैंने अपने छींके की भेंट समर्पित की और कनु ने अपना सर्वोत्तम सबसे अधिक प्रिय पदार्थ मेरे आगे रख दिया। यह देखो ! अहा ! औरों ने भी वस्तु लाकर कन्हैया भैया को दीं अवश्य, परन्तु इसने होठों पर रक्खी सबसे प्रथम मेरी दी हुई वस्तु ! अहा ! क्या सुख सिन्धु उमड़ रहा है रसमयी बाला के उर एवं प्राणों के सम्मुख। पू० गुरुदेव का देह भले ही एकान्त में रहे, चाहे अनेक लोगों से घिरा कार्यरत हो - कदाचित अपने प्रियतम प्राणवल्लभ की अखण्ड स्मृति रह-रहकर उन में प्रत्यक्ष संयोग की भ्रान्ति नहीं उत्पन्न करती रहती होती तो सचमुच ही अपने प्रियतम के विरह में एक दिवस भी वे जीवन धारण कर पाते या नहीं - यह निर्णय कर लेना सहज नहीं है।

मैंने निरे बालकपन में उनकी यह दशा अपने इन चर्मचक्षुओं से देखी है। जैसा स्मरण है आगे के अध्याय में वर्णन कर रहा हूँ।

"मुझे भूत लग गया था और अब तो भूतनी भी आ गयी है"

बात १९४० ई० की है मई जून का महीना था। पू० भाईजी (पू० पोद्दार महाराज) गोरखपुर छोड़कर पहले तो एकान्तवास की दृष्टि से ड़ालमिया दादरी चले गये थे, पश्चात् गोरखपुर जाकर पुनः सभी सम्पादक-विभाग सहित अपने पूर्वजों के ग्राम रतनगढ़ आ गये थे। मेरे मामा श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी भी रतनगढ़ ही श्री भाईजी के साथ ही चले आये थे। वे श्रीपोद्दार महाराज की हवेली के पास ही एक दूसरे अग्रवाल सेठ की हवेली थी, उसमें रहते थे।

मैं एकादश वर्षीय बालक मेरे मामा के पास ही पढ़ने चला आया था। दिन में भोजनादि करके मेरे मामाजी श्रीपोद्दार महाराज की हवेली में ही चले जाते थे। वहीं उनका कार्यालय था। कल्याण एवं कल्याण-कल्पतरु के सम्पादन का कार्य वहीं से होता था। मेरी ग्रीष्मावकाश की छुट्टियाँ चल रही थीं। अतः मैं भी सम्पादक विभाग के धार्मिक पुस्तकालय से पुस्तकें पढ़ने मेरे मामाजी के साथ ही चला जाता था। धार्मिक बालोपयोगी भक्त चरित्र पढ़ने का मुझे बहुत ही शौक था।

हवेली की पिरोल के पास ही दुतल्ले में पू० गुरुदेव का कमरा था। दिन में पू० गुरुदेव सर्वथा एकान्त में रहते थे। मेरा गुरुदेव से परिचय तो वे सर्वप्रथम चुरू सन् १९३७ में श्रीसेठजी गोयनका जी के साथ-साथ जब आये थे तभी से था, परन्तु इन तीन वर्षों में मिलन नहीं हुआ था।

लगभग ४ बजे थे। मैं चुपचाप सीढ़ी चढ़कर पू० गुरुदेव को दरवाजे के संधिस्थल से देखने लगा। गुरुदेव बालकपन से ही न जाने मुझे क्यों इतने प्रिय लगते थे कि मुझे उनसे मिले बिना रहा ही नहीं जा रहा था। मैं जबसे रतनगढ़ आया था तभी से उनसे मिलने की सोच रहा था, परन्तु प्रथम तो वे मौन थे फिर नाम-जप में तल्लीन रहते थे, अतः मेरे मामाजी उनसे मिलाने का उत्साह ही प्रकट नहीं करते थे।

मैंने दरवाजों के सन्धिस्थल में आँख गड़ाकर देखा - पू० गुरुदेव अपने तख्ते (लकड़ी के) पर शान्त ध्यानस्थ बैठे थे। मैंने साहस करके दरवाजा

खोल लिया। दरवाज़ा मात्र उढ़का हुआ था। उसमें भीतर से सिटकनी, कुण्डी कुछ भी नहीं लगी थी। दरवाजा थोड़ा सा धक्का देते ही खुल गया। मैंने देखा उनके श्वास अति मन्द थे। वक्षस्थल ऊर्ध्व होने से उनके मुख एवं मस्तक पर रक्त प्रवाह का अधिक चाप था। मैं उनकी विचित्र दशा चुपचाप बहुत देर तक देखता रहा। उनके नेत्र स्थिर थे। मैने उनको 'बाबा' बाबा' कहकर आवाज दी। परन्तु उन्होंने मुझे न देखा, न सुना। मैं विस्मय कर रहा था। मैंने ऐसी दशा किसी की नहीं देखी थी। मेरी माँ हिस्टीरिया के कारण बेहोश हो जाया करती थी, परन्तु वह तो विक्षिप्त रोगिणी की व्याकुल दशा होती थी। यहाँ तो अपरिसीम शान्ति और उनके चेहरे में ऐसी स्निग्ध मुसकान थी कि मेरा मन हटने को कर ही नहीं रहा था। मैं एक घण्टे के लगभग उनके पास ही बैठा रहा। मुझे यही भय था कि कहीं इनकी मृत्यु नहीं हो रही हो। मैने उनको ललाट से, पैरों से स्पर्श किया, तीन चार बार बाबा, बाबा सम्बोधित भी किया, परन्तु वे संज्ञाशून्य थे।

हाँ, रह-रहकर नेत्रों से जो प्राय: स्थिर थे अश्रु की एक दो मुक्ता बिन्दु अवश्य कपोलों पर ढ़लक आती थी। इसका अर्थ था कि वे जीवन्त थे।

लगभग एक घण्टे पश्चात उनके नेत्र हिले और वे होश में आये। मैंने उन्हें प्रणाम कर पूछा - "बाबा ! आप स्वस्थ हैं ? आपको क्या हो गया था ? क्या आपको कोई रोग है ?

उन्होंने 'राधा राधा' कहकर निषेध किया। वे राधा राधा ही बोलते थे। उन दिनों घरों में शौचालय नहीं होते थे। स्त्रियाँ बाड़ों में जो हवेली के पास ही कुछ दूरी पर होते थे, जिन्हें नोहरे कहा करते थे, वहाँ शौच जाती थीं और पुरुष लोग दूर धोरों में (रेत के बडे ऊंचे टीलों में) शौच जाया करते थे। सभी ग्राम के पुरुषों को लोटा लेकर (जलपात्र लेकर) ग्राम से बाहर शौच के लिये जाता देखा जा सकता था। ग्राम के बाहर इसी उद्देश्य से बगीचियाँ भी होती थीं, कूंओं में जल एवं लोटों (जलपात्रों) की व्यवस्था भी रहती थी, जिससे शौच जाने की किया में सुविधा हो जावे।

पू० गुरुदेव लगभग पांच बजे शौच के लिये जाने को जब तत्पर हुए तो मैं भी उनके साथ हो लिया। वे मुझे लेकर रेतीले धोरों में निकल आये।

मैंने उनसे पुन: जिज्ञासा की -- "बाबा ! आपको क्या तकलीफ है ? आपके नेत्रों से अश्रु तो आ रहे थे, परन्तु आप सर्वथा संज्ञाहीन थे। मैं एक घण्टे से आपके कमरे में आपको देखता चुपचाप बैठा था।

पू० गुरुदेव ने मुझसे बहुत ही सात्विक विनोद किया। वे स्लेट तो साथ लाये नहीं थे, अत: उन्होंने रेत में ही अँगुली से लिखकर कहना प्रारंभ किया -- वे मुझ बालक के सम्मुख अपनी उच्च आध्यात्मिक भाव दशा को किस शब्दों में प्रकाश करते वे सत्य के साथ ही साथ आत्म गोपन भी करना चाहते थे। अत: उन्होंने थोड़ा कपट का आश्रय लेकर यही बात बताई :-- "भैया, आज के तीन वर्ष पूर्व मैं राप्ती नदी के किनारे रहता था। वहाँ मुझे एक भूत लग गया था, एवं रतनगढ़ आने पर तो एक भूतनी भी आ गयी है। वह भूतनी तो मुझे सदा पकड़े रहती है। कभी एक क्षण भी नहीं छोड़ती। मेरी आँखों से वही देखती है, मेरे मुख से वही खाती है, मेरे कानों से वही सुनती है, और भैया ! कभी-कभी वह भूत भी आता है। दिन में एक बार तो आता ही है और भूतनी को अपने साथ भी ले जाता है। जब भूतनी भूत के साथ चली जाती है, तब मेरी ऐसी दशा हो जाती है।" मैं अतिशय शंकित हो गया था। मैंने उनसे पूछा -- "इस समय वह भूतनी आपके ऊपर है ?" उन्होंने कहा -- "भूतनी ही तो तुझसे पुरुषाकार भाषा में बोल रही है। मुझे तो उसने मार ही ड़ाला है। मेरे स्थान पर शरीर का सब नियंत्रण तो वही कर रही है।" मैने आश्चर्य से पूछा --"आप पूरे मरे हुए है, मुर्दा हैं ?" उन्होंने कहा -- "सर्वथा"।

"फिर कब तक वह भूतनी आपको पकड़े रखेगी ?" मैंने पुन: जिज्ञासा की। वे बोले -- "जब तक भूत-भूतनी की इच्छा ?" मैंने कहा -- "जब भूतनी ही बोल रही है तब वह मुझे पकड़े रहती है" ऐसा कैसे बोलती है ? उन्होंने कहा --"यह भी भूतनी की इच्छा।"

फिर बोले --"तू न तो कभी अकेले मेरे कमरे में आया कर और न ही मेरे साथ घूमने एकान्त धोरों में चला कर। अन्यथा कहीं तुझे भी भूतनी नहीं लग जाये ?"

मैं सोचने लगा - 'इसीलिये पू. गुरुदेव बहुत ही दुबली पतली आकृति के हैं। भोजन वे करते हैं और चट कर जाती है भूतनी। परन्तु उस बालक को भूतनी का भय सर्वथा नहीं लगता था। उसके पास तो तुलसी की कण्ठी है, यज्ञोपवीत है और गायत्री मंत्र हैं। ये सन्यासी बाबा तुलसी की कण्ठी नहीं रखते होंगे, न ही यज्ञोपवीत एवं गायत्री मंत्र भी इन्होंने नहीं जपा होगा। तभी भूत ने इन्हें दबोच लिया।

उस अबोध बालक को क्या पता कि साक्षात् अधिदेवी तुलसी एवं यमुनाजी जो उसके महाप्रभु वल्लभाचार्य की गुरुस्थानीया हैं वे तो उसके बाबा को सेवा-सामग्री, पुष्प-हार, आभूषण-वस्त्र साक्षात् प्रकट होकर प्रदान करती हैं।

वह एकादश वर्षीय बालक अपने मामा के साथ जिस मकान में रहता है वह विशाल हवेली रतनगढ़ ग्राम में 'भूतों की हवेली' करके प्रसिद्ध थी। जहाँ अनेकों लोगों को अनेक बार भूत दिख चुका था, उसी स्थान पर वह रोज सायंकाल एवं दुपहरी में शौच जाता है। वह तो रोज भूत को चिढ़ाकर आता है -**"अरे भूतड़ा, मेरे गले में तुलसी जी की कण्ठी। करना हो सो करले प्यारे तेर सिर पर मैं मारता डंडी ।"** उसने अपने मामाजी को भी यह मंत्र बताया है। उसके मामाजी ने उसे डाँटकर मना किया है कि उसे किसी को भी इस प्रकार गाली नहीं देनी चाहिये। आखिर भूत-प्रेत भी भगवान के ही रूप होते हैं। परन्तु अनुशासन मानना, बड़ों की आज्ञानुसार चलना तो उसके स्वभाव में ही नहीं है। जो मन में आता है वही करता है वह।

दूसरे दिन वह बालक पुन: उसी समय साढे तीन चार बजे के आसपास उन साधु बाबा के कमरे में पुन: चला गया। आज भी साधु बाबा अपने देह कलेवर में थे नहीं। देह कलेवर निर्जीव वस्त्र की तरह उस कमरे में तख्ते पर पड़ा था। वह देह कलेवर तो संज्ञाशून्य था, परन्तु उसके प्राण तो स्पन्दित हो रहे थे रस के महा समुद्र में। रस का अनन्त अथाह तट-हीन समुद्र उनके अन्त:करण को स्पन्दित कर रहा था, उसके कारण अचिन्त्यावस्था में डूबे होने पर भी देह पर अष्ट सात्विक विकार रह-रहकर व्यक्त हो ही जाते थे। कभी अश्रुधार नेत्रों से बह उठती , कंभी स्वेद से देह लथपथ हो जाती, कभी कुछ काल तक अनवरत भीषण कम्प होने लगता,कभी रोमांच हो आता और उनके रोम-रोम ऊर्ध्व हो जाते।

वह अबोध बालक समझ रहा था कि भूत-भूतनी मेरे बाबा को कष्ट दे रहे हैं। इसीलिये मेरे बाबा के शरीर की यह दशा है। उसने अपने गले से तुलसी की कंठी उतारी और उसे अपने बाबा के कमुण्डलु जल से धोकर 'श्रीकृष्ण शरणं मम' मंत्र का एक सौ आठ बार उच्चारण करते हुए उसे बाबा के गले में डाल दी। इसके पश्चात वह 'श्रीकृष्ण शरणं मम' मंत्र का मन ही मन अनवरत उच्चारण करता हुआ बाबा के टपकते अश्रुओं को अपनी हथेली में ग्रहण करना प्रारंभ कर देता है। वह मन ही मन भूत भूतनी से प्रार्थना

करता है कि वे भले ही उसके बाबा के देह में रहें परन्तु उसे कष्ट सर्वथा नहीं दें। वह जानता है कि बाबा की आत्मा तो भूत-भूतनी मार चुके हैं अब यदि इन्होंने यह देह छोड़ दी तो उसके बाबा मुर्दा(शव) हो जावेंगे। अत: वह अपने बाबा को जीवित तो रखना चाहता है, परन्तु सुखी, हँसता-खेलता, एवं बोलता व्यवहार करता देखना चाहता है। उन्हें इस प्रकार अतिशय पीड़ा से काँपते, रोते, भय से रोमांचित होते, पसीने से लथपथ होते देखकर उसके प्राण बाहर से भीतर तक काँप उठे हैं। अपने बाबा की दु:ख-वेदना बँटाने का उसको यही उपाय समझ में आया कि वह अपने बाबा के आँसुओं को अपनी हथेली में इकट्ठा कर अपने अंग-अंग में चुपड़ ले। संभव है इससे भूत-भूतनी उसको पीड़ित करना प्रारंभ कर दें और उसके बाबा कुछ काल तो उनके द्वारा दिये कष्ट से विराम पा सकें। वह तो 'श्री कृष्ण शरणं मम' अमोघ मंत्र से फिर भूत-भूतनी को सीधा कर ही देगा।

इधर तो वह अबोध बालक रसमयी के बाह्य कलेवर के अश्रु इकट्ठे कर रहा है और उधर पू० गुरुदेव राधा बाबा रसमयी बाला बने हृदय देश के रस-राज्य में अपने साँवरे प्रियतम पर प्राण न्यौछावर कर रहे हैं।

आवनी लीला

प० पू० गुरुदेव की भाव-देह रसमयी के प्राण एवं मन विलक्षण भावदृष्य देख रहे हैं :-- संध्या के किंचित् रक्ताभ श्याम परिधान की आभा वन प्रान्तर् के आकाश में परिव्याप्त हो चुकी है। सखाओं द्वारा उनके प्राण सखा का सर्वांग श्रृंगार सम्पन्न हो चुका है। रसमयी-प्राणवल्लभ नीलमणि के महामरकत श्यामल श्रीअंगों की निराली शोभा बस देखते ही बनती है। सखाओं ने उसका कैसा प्यारा श्रृंगार किया है। मस्तक को तो मयूर पिच्छ निर्मित मनोहर मुकुट से मण्डित किया है। घुँघराली अलकों में विविध वर्ण के महँ-महँ करते हुए कुसुम समूह गुम्फित हो रहे हैं। सखाओं द्वारा पहनाये अन्य अंगों में भी यथायोग्य कुसुमों के ही आभरण सुशोभित हैं। नवीन, रंग-बिरंगी, गैरिक आदि वन्य धातुओं से श्याम कलेवर पर सुन्दराति सुन्दर विविध चित्रों का निर्माण भी सभी ने मिलकर किया है।

सर्वांगों से पूर्ण श्रृंगारित यह साँवरा कैसा मनोहर है कि इसकी शोभा सब श्रृंगारों को श्रृंगारित कर रही है। श्रृंगारों की भला सामर्थ्य ही ऐसी कहाँ है जो इसे सजा सकें।

अहा, जब यह अपने बिम्ब-विडम्बी अधरों पर वंशी को धारण कर उससे परम रसमय अत्यंत स्फुट स्वरों का सृजन करता है तो समग्र विश्व ही मोहित हो जाता है। अब तो व्रजराजकुमार अतुल सुन्दर वेषभूषा से सुसज्जित हुए वन से गोष्ठ की ओर अग्रसर भी होने लगे। मधुरिमा का स्रोत प्रसरित हो रहा है उनके रोम-रोम से। नृत्य की नवनूतन भंगिमाओं के सहित पदविन्यास करते हुए वे सखा मण्डली को परमानन्द में डुबा रहे हैं।

देखो ! यह नीलसुन्दर एक सौन्दर्य समुद्र की तरह लहराता हुआ चाल भरता है। कभी तो यह तरुपत्रों को मोडकर स्वनिर्मित वाद्ययंत्र (सीटी) में अपने परम सुरभित मुखश्वास को भरकर अद्भुत मनोहर राग की एक ऊँची अतिशय मधुर तान छेड़ता है और कभी गुँजाता है अपना मेघ गंभीर श्रृंगीनाद। कभी-कभी यह अपने कर कमलों को ही शंखाकृति दे देता है और तब शंखनाद से स्पर्धा करती हुई कैसी परम मधुर ध्वनि सर्वत्र वन में प्रसरित हो उठती है उसका कौन वर्णन कर पावे।

और ये नन्दनन्दन के सखा जब अपने हत्तल के सुख को अवरुद्ध करने में असमर्थ हो जाते हैं तो मधुर उच्च स्वर से अपने कन्हैया भैया की पवित्र कीर्त्ति का गान करने लगते हैं। प्रत्येक के कण्ठ से व्रजेन्द्र-नन्दन की प्रशंसा के गीत झर रहे हैं। सर्वथा अपनी ही प्रतिभा से रचित एवं तालबन्ध से गाये हुए इन मधुर गीतों में भरा है नन्दनन्दन के सुयश का वर्णन, उनकी बाल्य चेष्टामयी पुनीत कीर्त्ति का चारु चित्रण।

अरी यो कान्हर कारो री, नहीं री यो व्रज उजियारो री
सात बरस के साँवरिया ने गिरिवर धार्‌यौ री।
कालिय ह्रद में साँप नथायो, दावानल मुख पान करायो
तृणावर्त बक अघ से असुरन मार पछार्‌यौ री
चीर चोर, चितचोर, और दधिचोर कहायो री

अहा ! इधर तो पूर्ण महा सख्य रस प्रवाहित हो रहा है, और इस अमित रस में समग्र वृन्दावन झूम रहा है और उधर प्राणों की समग्र उत्कण्ठा लिये

रसमयी अपना तन, मन सबकुछ सर्वथा विस्मृत किये अपनी भग्न किन्तु प्रीति प्रासाद बनी कुटिया में अपने प्राणधन नीलमणि की आकुल प्रतीक्षा में सर्वथा उन्मादिनी हो रही है। वह कभी द्वार पर खड़ी होती है एवं कभी अपने प्रियतम के स्वागतार्थ सजायी रखी सेवा सामग्री की जांच परख करती है। उसके नेत्र केन्द्रित हैं, उस दिशा में, वन के उस पथ की ओर ही जिधर से ये व्रजेन्द्रनन्दन आते हैं।

उसका मन पुनः दौड़ जाता है अपने प्रियतम के पास। देखो ! देखो इनकी भुजाओं में कड़े, कंकण और बाजुबंद शोभा पा रहे हैं। हाथों में मुद्रिका अंगूठी है। और सबसे शोभा देने वाली तो इनके हाथों की नख राशि है।

रसमयी के ज्योंही ध्यान में प्रियतम के करकमल आते हैं, वह सोचने लगती है, हाय ! मैं कितनी ही मेंहदी क्यों न लगालूँ मेरे मेंहदी लगे हाथ कितने कुरुप हैं, और आते ही वे तो सर्वप्रथम अपने सुकोमल हाथों में इन्हें ही धारण करेंगे। इन्हें पुष्पसार से सुरभित तो कर लूँ। हाय ! ये खुरदरे हाथ, उनकी सुकोमलतम हथेलियों को कष्टकारी न हों।

रसमयी इस प्रकार अपने चित्त को व्यग्र कर रही है, इतने में ही उसके श्रवणरंध्रों में वेणुरव गूँज उठता है। अहा ! वे देखो वे आ गये, वे रहे उसके प्राणाराम। उसके दृगों में श्याम ज्योति पूरित हो उठती है।

विचित्र साज श्रृंगार से विभूषित हुए, अपनी परम रमणीय चेष्टाओं से पद-पद पर सुख सरिता का सृजन कर उसमें स्वयं ही अवगाहन करते हुए, सखाओं को निमग्न करते हुए रसमयी नयनानंदवर्धन प्रियतम अपनी छाया छवि से तो ब्रजपुर में प्रवेश कर जाते हैं,(गोकुल की ओर प्रवेश कर जाते हैं) और स्वयं रसमयी की कुटिया के पार्श्व में कदम्ब वृक्ष पर खड़े हो जाते हैं।

बर्ह प्रसूननवधातुविचित्रतांगः प्रोद्दामवेणुदलश्रृंगरसोत्सवाद्यः।वत्सान् गृणन्-ननुगगीतपवित्रकीर्तिः गोपी दृगुत्सव दृशिःप्रविवेश गोष्ठम् ॥
श्रीमद्भागवत १०/१४/४७

रसमयी में उन्हें देखते ही माधुर्य स्नेह की ऐसी प्रखर धारा उमड़ती है कि उसका हृदय विगलित हो उठता है। रसमयी के मन-प्राणों के पीछे उसका हृदय भी बह चलता है अपने प्रियतम नन्दनन्दन की ही ओर। अब उसका शरीर उसकी कुटिया में रह पावे, भला यह कैसे संभव है। परन्तु लज्जा ने उसके पैरों की गति में ताले जड़ दिये हैं। साथ ही सात्विक भावों का उन्मेष जो हो आया। जड़िमा से समस्त अंग अवश हो गये। जहाँ की तहाँ वह खड़ी

ही रह गयी। रसमयी के कमल-नेत्रों में प्रेमानन्द के अश्रु झरने लगे हैं। वे अश्रु उसके कपोलों की सज्जा करने लगे हैं। अब उसका प्रियतम नीलम अपने आपको कैसे रोक पावे। वह निकट से निकटतर, निकटतम आता चला आता है। अपनी प्राणप्रिया के भुजपाश में स्वयं को बँधवाले अथवा उसे अपनी भुजपाश में बाँध ले। रसमयी तो अपने पैर चाहकर भी उठा नहीं पा रही है, नहीं तो वह दौड़ पड़ती। भावों का वेग उस अवस्था में उसे स्वेद से लथपथ कर रहा है साथ ही अश्रुओं की वर्षा से नहला रहा है। और नीलमणि उसके प्रियतम अपने कमल जैसे हाथ फैलाकर बटोरने लगे हैं अपनी ही हथेलियों में उसके अश्रुप्रवाह को।

ओह ! इस मिलन सुख का वर्णन कोई कैसे करे। इसमें एक विचित्र विशेषता है। यह मिलन है तो एक दैनन्दिनी घटना। प्रतिदिन नन्दनन्दन रसमयी की कुटिया में आते हैं। प्रतिदिन ही रसमयी उन्हें प्यार से गले लगाये अपनी कुटिया के अन्दर ले जाती है, प्रतिदिन ही वह उन्हें अपनी शय्या में बैठाती है उन्हें वनमाला पहनाती है। केसर कस्तूरी से उनके अंगों को विलेपित करती है। परन्तु न जाने महती आश्चर्य है प्रतिदिन ही ऐसा प्रतीत होता है मानो युग-युग के अन्तराल से आज ही प्राणप्रिय प्रथम बार ही आये हैं और प्रतिदिन ही इसमें गत दिवस की अपेक्षा सुख की ऐसी एक अभिनव अप्रतिम लहर परिव्याप्त हो जाती है, जिसकी झाँकी प्राकृत जगत के हम अधम जीवों की कल्पना में भी आनी संभव नहीं है।

देखो ! नीलमणि प्राणाराम की जैसे ही सुकोमल हथेलियाँ अश्रुओं से भरती हैं वह इन्हें छिड़क लेता है अपने कलेवर पर। अरे, वह तो अपनी प्राणप्रिया की प्रेमदशा को देखकर स्वयं भी प्रेमाश्रु बहाने लगा।

कहना कठिन है यह नीलमणि एवं रसमयी की अश्रु-प्रवाह-एकत्रीकरण की लीला कितने काल तक चलती रहेगी और उनकी यह प्रेम समाधि कब टूटेगी।

देखो ! प्रियतम नीलम की चंचल प्रेम समाधि कैसी विलक्षण है। समाधि भाषा में ही व्यक्त उसका प्रेमगीत एवं मधुस्यन्दी कोकिल के समान मधुर वाणी में गायन तो तनिक सुनो।

'प्रीति स्वाति जल से उपजीं ये मुक्ता तो मम अलंकार हैं।
प्रिया नयन सीपी से प्रकटीं महाभाव की परम सार हैं।
यों कहकर प्रेमोन्मादी से लगे उन्हें कर भर उछालने।

'मम वृन्दावन सरस करो'- कह वन कुञ्जों में लगे डालने।
'चुगो चुगो इन रसमय मणियों को हे चातक ! हे मयूरगण !
कोकिल, कीर, पपिहरा, शुक सारिका करो सज्जित सब तन मन।
यह सौभाग्य पुनः न मिलेगा हे लतिकाओं, हे पुष्पित वन
ये अशेष हैं अगणित हैं साजो इनसे समस्त वृन्दावन।
प्रियतम की इस महाभाव लहरी को निरख परम विस्मित हो
लगी बहाने प्रिया अश्रु मानो दो नेत्र नहीं झरने हों।
भर भर अञ्जलि अश्रु उछाल रहे उन्मत्त हुए जीवन धन
नाच नाचकर स्नान कर रहा था जीवन्त सकल वृन्दावन।
स्पर्धा होने लगी प्राणधन में प्यारी की अश्रुधार में
मात्र भाव ही भाव बह रहा अश्रु बना उन नेत्र द्वार में
भला भाव भी कभी पराजित हुआ नाथ ! वह तो अव्यय है।
तुम व्यय करना चाहो उसको हार तुम्हारी ही निश्चय है।
यों कह बाहुपाश में बाँध लिया विश्रान्त थके प्रिय को जब।
अश्रु मोतियों से वह लगी भिगोने उनका रोम रोम तब।
अंग अंग धोये प्रेम सँजोये सजल नयन धारा बरसाकर।
अलक तिलक आभूषण सब पहराये प्रीति अश्रु बिखराकर।
कैसी सुखद प्रीति वर्षा थी, नहा रहे, प्रेमी प्रेमास्पद।
मसृण धरा थी गगन सुनेहिल प्राण प्रीति रस भीगे गद्‌गद।

यह रसमयी प्राणाराम ऐसा ही भावग्राही है कि भाव में नहाता थकता ही नहीं हैं। अपने प्रिया-प्रेम में अहा वह कैसा नहाया है और अब अपनी प्रिया की भुजा में बँधा बेसुध हो गया है। देखो ! देखो, यहाँ तो यह रसमयी प्राणवल्लभ था और अब यह गोपी प्राणवल्लभ है। है वही साँवरा श्यामसुन्दर अनन्त रसनिधि परन्तु यहाँ यह गोकुल की वीथियों में गोप-व्रजवधू-नायक हो रहा है। देखो ! देखो !! एक से एक अति सुन्दरी व्रजबालायें नवनवायमान यौवन के उन्मेष से भरी, अटारियों में चढ़ीं, इसे देखने को नयन बिछाये खड़ी हैं। अहा ! इनके नयनों में कैसी प्रेमोत्सुकता है। इनकी प्रतीक्षा में कैसी सरस आकुलता है।

लो ! धूलि उड़ रही है। गोकुल के पश्चिम दिशा की ओर सभी की आँखें विजड़ित हैं। सुदूरगामी वन प्रदेश की तरफ से आने वाले पथ पर धूलि के अम्बार के मध्य उसका प्राकट्य होगा। धूलि धूसरित अतिमनोहर श्यामल

केशराशि के ऊपर लहराता मोरमुकुट, अरे, इन व्रजबालाओं की ही नहीं इन पशु-पक्षियों तक की भी पलकें उसे देखते ही गिरना बन्द हो जावेंगी। उन सभी के प्राणों की एक ही तो पुकार होगी :--

देख न देत न बैरिन पलकें।
सुन्दर वदन लाल गिरिधर को, बीच परत मानो वज्र की सलकैं।
ऐसे मुख देखन को सजनी कहा कियौ यह पूत कमल कैं।
नन्ददास सब जड़न की यह गति मीन मरत भावैं नहिं जलकैं।।

देखो एक कह रही है --"यह शोभा का सिन्धु है।" दूसरी मूक है परन्तु उसके प्राण चीत्कार कर रहे हैं --"यह छवि समुद्र मेरे प्राणों का भी प्राण है।" तीसरी का पारस्परिक वार्तालाप सुनो -- यह तो मेरी आत्मा की आत्मा, मेरा चित्तचोर है।"

छतों पर चढ़ी झुण्ड की झुण्ड इन गोपियों में उसको देखने की कैसी आतुरता है। उनके प्राणों की समस्त शक्ति नेत्रों में ही समाहित हो गयी है। शरीर के सभी अवयव, रोम-रोम, नेत्रों की ओर दौड़ लगा रहे हैं। सभी अंग अवयव रूप दर्शन में असमर्थ जो हैं। नेत्रों को ही तो विधाता ने यह सौभाग्य दिया है। और उन्हें तो यदि आनन्द का, तृप्ति का कुछ अंश मिलेगा तो नेत्रों के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है।

एक गोपी कह रही है -- "बहिन ये सखागण कैसे सौभाग्यवान हैं जो इसे नित्य नवीन श्रृंगार से सजाते हैं, इन्हें जितने भी वन में सुन्दर सुगन्धित पुष्प मिल पाते हैं, सभी पुष्प इसकी घुँघराली केशराशि में खौंस देते हैं। देखो तो सही, इस पीले कर्णिकार पुष्प की कैसी शोभा है जो इसके एक कान में कुण्डल की तरह सज्जित है।" दूसरी कहती है--"बेचारी नन्दरानी तो इसके प्रेम में ही विसुध रहती है, और यशोदा की दासियाँ इसके अतसी कुसुम से पतले-पतले कानों में मोटे-मोटे स्वर्ण-कुण्डल जो रत्नों से और भी भारी हो जाते हैं पहना देती हैं। हाय ! यह बेचारा फूल सा सुकुमार स्वर्ण-कुण्डलों के कानों में लटकाने से, तथा भारी स्वर्ण मुकुट को सिर पर ढ़ोने से कितना कष्ट पाता होगा ? ये कठोर हीरक, माणक एवं भारी मणियाँ इसके सुकोमल अंगों में कितनी चुभती होंगी। इन सखाओं ने उचित किया। सब धातुओं को, मणियों, पत्थरों को वन में फैंक कर, इसका पुष्प श्रृंगार कर दिया। अरी !

प्रभात में जब यह वन जा रहा था तो मैं इसके भारी श्रृंगार को देखकर टप-टप अश्रु टपका रही थी। हाय ! ये स्वर्ण के मणिजटित बाजूबन्द, स्वर्ण के कड़े, मुद्रिका सभी इसके सुकोमल अंगों में कितना चुभते होंगे। अहा ! यह पुष्प श्रृंगार इसको कितना फब रहा है। सखाओं ने कुछ प्रेम प्यार पाया तो है ?

तीसरी कहती है --"अरी बहिन ! ये वन पुष्प भी विचित्र हैं। इन पुष्पों ने हीरक मणियों की ज्योति न जाने कहाँ से पाई है ? ये पुष्प हीरों की सी ज्योति निकालकर इसके कपोलों को दमका रहे हैं।

और चौथी कह रही है -- देख सखी ! इस सखा समूह ने तो पूर्णिमा के चाँद को ही मानो इसके ललाट पर विजड़ित कर दिया हो, क्या ही प्यारा बिन्दु इसके ललाट पर लगाया है। कुंकुम में तो ऐसी शोभा नहीं होती- ये सखा अपने सखा को कैसा सजाते हैं री !

अब पाँचवी की बात सुनो। वह कह रही है - देख री सखी ! दल के दल मधुमत्त भ्रमर मँडरा रहे हैं। कुछ तो व्रजेन्द्र नन्दन के कण्ठ देश एवं वक्षस्थल पर झूलती हुई वन माला पर भी आ विराजे हैं। इन सभी का एक स्वाभाविक गुञ्जन है, और नीलसुन्दर की अद्‌भुत अलौकिक परम मनोहारिणी अनुकृति का रागमय स्वर स्पन्दित हो रहा है, तथा उनमें मिल रही है शिशुओं के आह्लादपूर्ण श्रीकृष्ण सुयश संगीत की ललित लहरियाँ। तीनों का विचित्र सुन्दर सम्मिश्रण हो रहा है, विचित्र सा समाँ बाँधा है, वृन्दावन बिहारी ने।"

कश्चित गायति गायत्सु मदान्धालिष्वनुव्रतैः।
उपगीयमान चरितः स्रग्वी संकर्षणान्वितः।। श्रीमदा. १०/१५/१०

अब छठी कहती है :-- देखो ! इस नयनाभिराम नन्दतनय के कर्ण पुटों में मधुर कोमल आलाप करते हुए शुक की यह मनोहारिणी ध्वनि भर जाती है और वे तत्क्षण उससे भी अधिक सरस स्वर में कीर का ही अनुकरण करने लगते हैं। कभी कोकिल कूजन की मधुर पंचम तान सुनकर उसकी अपेक्षा भी मृदुलतम कण्ठ से ठीक वैसे ही राग वे भी भरने लगते हैं। और फिर तो कुछ ही क्षणों में शुक-पिक-अलि सभी मौन धारण कर चुप बैठ जाते हैं। शान्त स्थिर होकर वे अपने इस अनोखे प्रतिद्वन्द्वी गायक की ओर मानो देखने लग

जाते हैं। उन्हें लज्जा सी लगने लगती है -- "कहाँ हमारी यह कर्कश ध्वनि और कहाँ इन नील सुन्दर का मधुस्यंदी स्वर।"

अनुजल्पति जल्पन्तं कल वाक्यैः शुकं क्वचित्।
क्वचित् सवल्गु कूजन्तमनुकूजति कोकिलम्।। श्री मद्भा. १०/१५/११

अब सातवीं की बात सुनो। वह कह रही है -- "देखो री ! हमारे प्यारे श्यामसुन्दर की शोभा ने सबसे बड़ी दुर्गति तो बिचारे कामदेवकी की है। इसे अपने बल का बहुत ही गर्व था री ! यह शंकरजी को हरा जो चुका था। हमारे प्यारे ने तो इसका अस्तित्व ही निःशेष कर दिया। उसे तुच्छातितुच्छ नगण्य बनाकर अपने चरणों में रख लिया री।"

"देख सखी ! व्रज में नर-मादा तो असंख्य जोड़े हैं। सभी एक दूसरे से परस्पर मिलते हैं, कोई भी वैरागी नहीं हुआ है, साथ-साथ सोते, बैठते एवं खाते-पीते रहते हैं, सभी परस्पर प्रेम भी करते हैं, एक दूसरे के अतिशय आत्मीय भी हैं, परन्तु फिर भी नर-मादा, और शिशु एवं वृद्ध, परिवार के सभी लोगों का चित्त डूबा रहता है इस साँवरे के मनोहर रूप में ही। गौएँ दूध देती हैं, दूध देते समय चाटती हैं नवजात वत्सों को ही। परन्तु कैसा आश्चर्य है कि उन्हें उनका दूध दुहैया गोप, एवं नवजात वत्स सभी दिख रहे हैं, प्राणधन नीलसुन्दर ही नीलसुन्दर। और ये इस अपने प्राणवल्लभ की ध्यान छवि को देखकर ही अपने मुख का अर्धचर्बित तृणग्रास छोड़कर, सिर को ऊपर उठा लेती हैं। इनके प्राणों की कैसी आकुल उत्कंठा है, अपने नित्य पालक नन्दनन्दन को देखते रहने की। और क्या जादू है, चाहे कोई अन्य गोपालक ही उनकी सेवा में हो, उन्हें तो यही प्रत्यक्ष दिखता है आनन्द विह्वलहुए नन्दनन्दन नीलमणि ही अपने पीताम्बर से गायों के मुख पर लगी रज पौंछ रहे हैं। और यह अनुभूति एक गाय की ही नहीं, असंख्य गायों की है, असंख्य गोवत्सों की है। असंख्य नेचुकियों, बछड़ियों की है। सभी नीलसुन्दर के अधरों से निस्सृत वाणी सुनती हैं, सभी उनका सर्व मोहनकारी स्पर्श पाती हैं एवं उनके ही प्यार और दुलार में सदा ही डूबी रहती हैं।

देखो, इस नन्दराय जी के गजराज से उसकी हथिनी कुछ कह रही है उसे भी सुन लो। हथिनी अपने जीवन सर्वस्व हाथी से कह रही है - मूर्ख ! नीचा मुख क्यों किये है ? क्या हुआ, इस नीलमणि बालक की मदमस्त लटक

भरी चाल ने तेरे अभिमान को चूर चूर कर दिया तो ? इसमें इतना लज्जित हो मुख नीचा कर जीवनभर उसे न देखने का व्रत लेने की मूर्खता कैसी ? अरे, इसके सामने देवराज इन्द्र, विश्वपिता ब्रह्माजी, सर्वमोहन कामदेव सबके अभिमान धराशायी हो गये हैं। उसके सम्मुख तू एक साधारण मोटी बुद्धि का हाथी क्या अर्थ रखता है ? अरे वैसे ही विधाता का प्रकोप है कि उसने हमें छोटी छोटी आँखें दी हैं। फिर इन आँखों की कृतकृत्यता का क्षण तो अभी ही आया है। इन्हीं क्षणों के लिये तो इन नेत्रों के होने की चरितार्थता है। फिर इस साँवरे सलोने प्राणों के प्यारे की ओर नयन भर कर देख न ! नयनों के द्वार से ही तो इसे हृदय के भीतर ले जाया जा सकता है। दूसरा तो कोई उपाय ही शेष नहीं है। तब इन अनमोल क्षणों को उदास होकर नीचा मुख किये क्यों व्यर्थ कर रहा है ? न्यौछावर कर दे अपने प्राणों को इस पर। जय हो ! इस प्राणों के प्यारे असमोर्ध्व सौन्दर्य माधुर्य की जय, जय, जय हो !! हाथी हथिनी प्रेमाश्रुओं से भीगे प्रेम में झूम रहे हैं।

देखो ! देखो !! शोभा समुद्र गोपीवल्लभ गौओं के पीछे-पीछे कैसा मधुर नृत्य कर रहा है। इसकी अंजलि में न जाने कहाँ से पुष्प भर जाते हैं और अटारियों पर चढ़ीं इसकी ओर सतृष्ण नयनों से देखती व्रजांगनाओं पर मुसका कर इस प्रकार पुष्प उछालता है कि पुष्प सीधे उनके उरोजों पर, कपोलों पर, उनके आनन पर, गिरते हैं और ये प्रीतिदेवियाँ भी उत्तर में इस पर इतनी पुष्पमालाओं की, पुष्पों की वर्षा करती हैं, कि सम्पूर्ण गोकुल का राजपथ पुष्पों से भर जाता है।

केवल नर नारी नहीं धरा के मस्तक मणि मुनि थे प्रियतम !
जो स्वर्लोकों के, भुवर्लोक, पन्नग तल तक के थे प्रियतम !
प्रेरित हो अन्तर्यामी से दौड़े आये सब थे प्रियतम !
जैसे थे वैसे ही प्रायः कुछ रूप धरे भी थे प्रियतम।।

(इस वनचारणोपरान्त आवनी की लीला का दर्शन करने धरा के केवल नर-नारी ही नहीं, मस्तक-मणि-मुनिगण भी आये थे। स्वर्गलोकों के, भुवर्लोकों के, एवं पन्नग तल तक (नागलोक) के सभी प्राणी अन्तर्यामी से प्रेरित हुए वहाँ दौड़े आये थे। कुछ अपने प्रकट रूपों में ही थे, और कुछ दूसरा रूप धारण किये थे।)

पश्चिम दिशा में सूर्यदेव रुक गये हैं। उनकी किरणें समशीतोष्ण सबको अतिशय सुखदायी हो रही हैं। पृथ्वी प्रतिक्षण नवीन-नवीन सुषमा धारण कर अपने प्राण प्यारे के चरणों में लिपट रही है।

शनैः शनैः व्रजवीथियों से होती यह नन्दनन्दन की टोली नन्दभवन में पर्यवसित हो जाती है। यशोदा मैया उन्मादिनी सी अपने लाला पर राई-लौन करती हैं, आरती नीराजन कर अपने अंक में भर लेती हैं।

इधर यह नीलसुन्दर नवनीरदवर्ण रससागर अपनी वात्सल्य-रस-घन मूर्ति मैया यशोदा के वक्ष में समाता है। वहाँ, वही माधुर्य-रस-सागर हुआ अपनी प्राणप्रिया रसमयी के आलिंगन में आबद्ध है। और ठीक, इसी समय श्रीपोद्दार महाराज की हेली में (हवेली शब्द का अपभ्रंश) अपने बाबा के कण्ठ से एक एकादश वर्षीय बालक लिपट जाता है। कैसा विलक्षण विचित्र साम्य अघटन-घटना-पटीयसी योगमाया संघटित करती है।

वे कैसे रसमय दिन थे

पू० गुरुदेव की आँख खुलती है। कण्ठ में लगे इस बालक को देखकर वे मुग्ध हो जाते हैं।

"अरे तू भीग कैसे गया रे?" उनका उससे पट्टी पर लिखकर प्रश्न होता है।

"आपका भूत आपको बहुत रुलाता है। मैं चाहता हूँ वह भूत-भूतनी मुझे लग जाये और आपको छोड़ दे। देखिये, आपकी आँखों से कितने अश्रु गिरे हैं। मैं चुपचाप आपके कमरे में आता हूँ। यह भूत मेरे सम्मुख आता ही नहीं। मैं तो उसे अमोघ 'श्रीकृष्णः शरणं मम' मंत्र से ठीक कर देता। मैंने आपको अपनी तुलसी की कंठी भी पहनायी, परन्तु आप पर कहीं कोई असर नहीं हुआ। एक घंटे से कभी वह आपको कँपाता है, कभी पसीने से लथपथ कर देता है, कभी रुलाता है, आपके नेत्रों से आँसुओं की धारा चलती है, आप तो बेहोश रहते हैं।"

बालक को रोत-रोते हिचकी बँध गयी है। वह रोये और बोले जा रहा है। और उसके बाबा अति प्यार से उसके आँसू पौंछते जा रहे हैं।

और तब वे रतनगढ़ ग्राम के धोरों में दौड़ने चले जाते हैं। वह भी स्कूल में फुटबाल का खिलाड़ी है और उसके बाबा भी फुटबाल के अच्छे

खिलाड़ी रहे हैं। परन्तु उसके बाबा उससे बहुत ही तेज दौड़ते हैं। वे कबड्डी में भी उसे हरा देते हैं। बालक किसी स्पर्धा में भी उनसे तेज नहीं पड़ पाता। उस बालक के जीवन के वे बहुत ही रसमय दिन थे। वह युवक सन्यासी जो उससे पन्द्रह-सोलह वर्ष बड़ा है उसे न जाने क्यों बहुत ही आत्मीय श्रद्धास्पद, एवं अनुकरणीय लगता है।

बालक आजकल ईश्वर से एक ही प्रार्थना करता है। "हे प्रभो ! मेरा तो दूसरा जन्म होगा ही, यदि हो तो इस सन्यासी को ही स्त्री बनाकर मेरी माँ बनाना। और यदि इसे स्त्री देह न दे तो मेरा बाप बना देना। और यदि ये सब भी न करे तो उसके साथ ही उसका जन्म अवश्य करना।"

एक दिवस रतनगढ़ के धोरों में उसने अपनी भावना अपने बाबा के सामने व्यक्त कर ही दी। "बाबा ! आप मुझे सबसे अधिक प्यारे लगते हैं। नाना, नानी, माँ, बाप, मौसियाँ, एवं सब सम्बन्धियों से भी आप अधिक प्यारे प्रतीत होते हैं। आपके साथ मेरा मरने के पश्चात् भी सम्बन्ध जुड़ा रहे ऐसा हो सकता है क्या ?"

पू० गुरुदेव ने कहा -- "भैया ! मैं तो मृत्यु के पश्चात् और इस जीवन में भी तेरे बड़े - मामाजी श्रीपोद्दार माहराज से ही जुड़ा हूँ तथा जुड़ा रहूँगा। तू इनसे जुड़ जाय तो तेरा मेरा जन्मान्तर में भी सम्बंध बना रहा सकता है।"

अब तो बालक बहुत ही घबड़ा गया। श्रीपोद्दार महाराज तो बहुत ही गंभीर, मुख फुलाकर, प्रूफ देखते हैं, वह ४० वर्ष बड़े अपने मामा के भी गुरुजन से कैसे अपना प्रेम प्यार बनाये। ये सन्यासी तो उसके साथ खेलते-कूदते सब सरलता से मित्रवत् व्यवहार करते हैं। वह चुप हो गया। उसने निर्णय कर लिया पोद्दार मामाजी के साथ उसकी दाल नहीं गलेगी।

अब उसने दूसरा प्रश्न किया -- "बाबा ! आपको मैं क्या कहूँ आपसे अपना क्या सम्बंध बनाऊँ ? श्रीपोद्दार मामाजी तो उसके बड़े मामा हैं, आपको 'छोटा मामा' कहूँ। बाबा, आप मेरे गुरु हो जाइये ?"

सन्यासी बाबा सकपका गये। उन्होंने तो अपने जन्मगत सम्बन्ध ही माँ, बाप, भाई, बहिन सबसे तोड़ दिये हैं। अपनी असहाय निरक्षर पत्नी तक को वह छोड़ आया है।

आज यह सन्यासी यदि अपनी चार-पाँच वर्ष पुरानी मनोदशा में होता तो इस बालक को अपने कमरे में घुसने तक नहीं देता। पहली भेंट में ही

इसे इस प्रकार रूखेपन से झिड़कता कि यह इस प्रकार चोरी-चोरी उसके निवास में घुसने का साहस ही नहीं कर सकता था। और यह बालक देह कलेवर से ही तो बालक है। इसके अन्तराल में तो उन्हें भगवती श्री राधारानी की परम प्यारी एक मंजरी दिखायी पड़ रही है। और उस सन्यासी के हृदयदेश में विराजित वह श्यामल ललित तृभंग आकृति भी तो बालक के प्यार का अनुमोदन कर रही है। तभी न इसके द्वारा शरीर से वही क्रिया हुई जो उनके अन्तस्थ प्राणवल्लभ उनके भावदेह से कर रहे थे। जब उनके प्राणवल्लभ उनके प्रेमाश्रु अपनी नीलकमल जैसी हथेली में संग्रहीत कर रहे थे, ठीक उसी समय इसके द्वारा भी यही क्रिया संघटित होना, क्या इस बालक की किसी सुदूर भविष्य की पात्रता को प्रमाणित नहीं करता ?

पू० गुरुदेव ने अपने हृदय देश में विराजित श्रीकृष्ण की पूर्ण स्वीकृति प्राप्त कर इस बालक हृदय को अपने स्नेह से भरपूर आपूरित कर दिया।

पू० गुरुदेव ने बालक को अतिशय प्यार से देखा।

बालक ने अपने बाबा से कहा-"बाबा ! मैं आपको एक गाना सुनाऊँ ?" उसके बाबा की अनुमति मिलने पर उसने उन्हें उसी कमरे में बैठकर जीवन का पहला भक्ति-पद सुनाया।

'तू दयालु दीन हौं, तू दानि हौं भिखारी।
हौं प्रसिद्ध पातकी, तू पाप-पुञ्ज हारी।
नाथ तू अनाथ को, अनाथ कौन मोसौं।
मो समान आरत नहिं आरतिहर तोसौं।
ब्रह्म तू, हौं जीव हौं, तू ठाकुर, हौं चेरो।
तात-मात गुरु-सखा, तू सब विधि हितु मेरो।
तोसौं मोसौं नाते अनेक मानिये जो भावै।
ज्यौं-त्यौं तुलसी कृपालु चरण शरण पावै।

सन्यासी बाबा ने प्यार से उसके सिर पर हाथ रख दिया है। बालक आज इतना प्रसन्न हुआ है कि उसके पाँव जमीन पर नहीं पड़ते। उसने अपने पूर्ण मनुहार से फिर पूछा -- "आप मेरे गुरु है न ?" उन्होंने जोर से बोलकर कहा -- "गुरु तो मैं तेरे बाप का भी हूँ। सन्यासी सबका गुरु होता है। परन्तु तुझे मुझे सच्चा मित्र मानना चाहिये। अन्यथा गुरु की आज्ञा नहीं

मानने से गुरु-अपराध हो जाता है।" प्रकारान्तर से इसे स्वीकृति मानकर बालक प्रसन्न हुआ दौड़ गया है।

दूसरे दिन पू० गुरुदेव ने बालक को अपने कमरे में चोरी-चोरी आने के लिये मना कर दिया, परन्तु उसके लिये एक रियायत कर दी है कि सायं चार बजे से पाँच बजे तक आफिस के कमरे में पू० गुरुदेव उससे एक घंटे प्रतिदिन या तो पद गायन सुनेंगे अथवा 'राधा-राधा' कहकर एक दूसरे को पीटने का खेल हुआ करेगा, फिर वे साथ-साथ ही धोरों में घूमने जाया करेंगे।

अब तो प्रतिदिन ही सन्यासी बाबा ठीक चार बजे आफिस में आ जाते हैं और बालक एवं सन्यासी बाबा परस्पर एक दूसरे को 'राधा-राधा' कहकर पीटने का खेल करते है। जब दोनों थक जाते हैं तो सन्यासी बाबा 'राधा-राधा' गाने लगते हैं। सन्यासी बाबा का कण्ठ इतना सुमधुर है कि बालक विभोर हो जाता है। उसके बाबा उसे संगीत भी सिखाते हैं। उन्होंने पीलू राग उसे सिखाया है। पीलू राग उसके बाबा का सर्वप्रिय राग है।

इस प्रकार यह कम महीनों तक चला। जब बालक स्कूल जाने लगा तो सायंकाल पोद्दार माहराज के नोहरे में बालक एक कमरे में हारमोनियम लेकर पद-गायन किया करता था। पू. गुरुदेव उन दिनों श्रीपोद्दार महाराज के निर्देश पर उनकी व्यक्तिगत लाइब्रेरी (पुस्तकालय) सुव्यवस्थित करने में लगे थे। अतः वहीं से बैठे-बैठे उसका पद गान सुना करते थे।

दोनों दोनों से बढ़कर

जिस व्यक्ति के जीवन में व्रजभाव अवतरित होता है, उसका अस्तित्व कथन मात्र के लिये बचता है। श्रीपोद्दार महाराज के जीवन में भी भगवान् की कृपा का अपरिसीम समुद्र लहराता रहता था। मैंने अपने निरे बालजीवन में पू० गुरुदेव की देह-दशा तो देखी ही थी, श्री पोद्दार महाराज के उतने निकट संपर्क में मैं नहीं आ पाया था। परन्तु श्रीपोद्दार महाराज भी एक दूसरे से बढ़कर वाली कहावत चरितार्थ करते थे।

मैंने पूर्व अध्याय में कहा है कि सायंकाल लगभग पाँच बजे पू० गुरुदेव रतनगढ़ के रेत के धोरों में शौच क्रिया करने एवं घूमने जाया करते थे। रतनगढ़ ग्राम के बाहर रेत के टीबे ही टीबे थे। कभी-कभी श्री गुरुदेव के साथ पोद्दार महाराज भी घूमने जाया करते थे। जब श्रीपोद्दार महाराज साथ

जाते तो पू० गुरुदेव उन्हें बैठकर प्राय: 'जयति तेऽधिकं जन्मना व्रज' गोपी-गीत सुनाया करते थे।

जब पू० गुरुदेव उन्हें गोपी गीत सुनाते उस समय उनकी भाव दशा देखते ही बनती थी। उनके हाथ में जल से भरा लोटा होता था और पू. गुरुदेव कमण्डलु रखा करते थे। परन्तु उनके हाथ एवं पैर लड़खड़ाते थे, जैसे कहीं सम्हल नहीं पावेंगे, गिर पड़ेंगे। एक दिन मैं पू० गुरुदेव के साथ घूमने जाने के लोभ में घर से चल पड़ा, परन्तु पता चला पू. गुरुदेव एवं पोद्दार महाराज चल पड़े हैं। मैं पीछे-पीछे गया। मेरे मामा श्रीचिम्मनलालजी गोस्वामी मेरे साथ थे। श्रीपोद्दार महाराज ग्रामवासियों के सम्मुख तो ठीक चल रहे थे, ज्यों ही एकान्त धोरों में बैठकर पू० गुरुदेव ने गोपी-गीत सुनाना प्रारंभ किया, मैं शौच किया कर रहा था अत: दूर से देख रहा था, उनकी दशा शराबी की तरह हो गयी थी। शौच हो आने से उनका (लोटा) जलपात्र हलका था, फिर भी उनसे संभल नहीं रहा था।

मैं दूर से सुन रहा था - वे कह रहे थे -- "बाबा! मेरी आँख में संसार है ही नहीं श्रीकृष्ण ही श्रीकृष्ण बचे हैं। मैं कुछ काल किसी वस्तु को देखता हूँ - फिर उसी स्थान में श्रीकृष्ण प्रकट हो जाते हैं। मैं अपने को एक निक्षिप्त भी नहीं कह सकता, विलक्षण दशा में हूँ। मुझे अपनी सत्ता के स्थान पर भी कभी श्रीकृष्ण, कभी श्रीराधारानी, कभी कोई गोपी दिखती है। अपने इस पार्थिव देह का भान भी मात्र 'कल्याण' एवं गीताप्रेस का कार्य करना है, इसलिये होता है। रुचि ऐसी ही होती है कि यह भी नहीं हो तो अच्छा रहे। मैं शरीर हूँ, मेरा परिवार है, ऐसी कभी वृति ही उदय नहीं होती। मेरे लिये न संसार बचा है, न सांसारिक पत्नी-पुत्र आदि सम्बन्ध बचे हैं, किन्तु स्वाभाविक मेरा जैसा व्यवहार वर्षों से चला आ रहा है, उन संस्कारों से उसी साँचे में ढ़ला व्यवहार चलता रहता है। पूरी ईमानदारी की बात यही है कि यह सब व्यवहार भी श्रीकृष्ण ही कर रहे हैं। स्वाभाविक ही श्रीकृष्ण अपनी इच्छा से जब जैसा व्यवहार इस पार्थिव देह से कराना चाहते हैं, वैसा करा लेते हैं। हाँ, यश-अपयश मुझे अवश्य मिलता है। परन्तु यश-अपयश करने वाले भी श्रीकृष्ण ही दिखते हैं।

पोद्दार महाराज इस प्रकार की बात बोलते-बोलते एक दम काँपे और धम्म से धोरें में गिरकर समाधिस्थ (बेहोश) हो गये। हम दोनों ही शौच क्रियार्थ दूर-दूर बैठे थे। थोड़ी देर पश्चात् श्रीपोद्दार महाराज ने अपने को

संवरित किया। वे अपने को संवरित करने की कला में बहुत ही माहिर थे। मैं रोने लग गया था। उन्होंने मुझे सांत्वना देते हुए कहा - "भाया ! थोड़ो चक्कर आ गयो थो। धोराँ में चालने को अभ्यास छूट गयो है।"

परन्तु वे रह-रहकर भावाविष्ट हो रहे थे। वे मेरे मामाजी एवं पू० गुरुदेव का सहारा लेकर चल रहे थे, परन्तु उनके पैर न तो ठीक से उठ रहे थे, न ही ठीक से पड़ रहे थे।

बाद में पू० गुरुदेव मेरे मामाजी को बता रहे थे कि जिस समय भाव का अवतरण होता है, व्यक्ति के वश की बात नहीं रहती।

श्रीपोद्दार महाराज को तो भगवान् श्रीकृष्ण ही सँभालते थे।

देख री देख अनिमेष या वेष कौ

उन दिनों श्रीपोद्दार महाराज ने रतनगढ़ में 'कल्याण' का सम्पादक विभाग होने से एक सुन्दर धार्मिक पुस्तकालय संगठित करने का विचार किया था। पू० गुरुदेव ही इस पुस्ताकलय को व्यवस्थित करने में रत थे। उनके सम्मुख पुस्तकों के ढ़ेर पड़े रहते थे। दिल्ली, बनारस, कलकत्ते, बम्बई सभी स्थानों के बड़े बड़े प्रकाशकों की सूचियों में से पुस्तकें चयन होतीं थी और पू० गुरुदेव ही उन्हें विषयानुसार भिन्न-भिन्न अलमारियों में वर्गीकरण करके रखते थे।

उस दिन दुपहरी में तीसरे पहर तीन बजे वह बालक पुस्तकालय के सामने श्रीपोद्दार महाराज की हवेली के बगल में उनके नोहरे में एक कमरे में हारमोनियम बाजा लेकर बैठ गया था और पद गायन कर रहा था। घर के संगीतमय वातावरण के कारण गायन कला उसे सहज थी।

वह बालक बहुत ही भाव से गा रहा था, और उसने देखा पुस्तकालय का काम बन्द कर उसके बाबा चुपचाप शान्त बैठ गये हैं। उनके नेत्र मुँद गये हैं। आंखों से मुक्ता बिन्दु रूप प्रेमाश्रुधार कपोलों पर विजड़ित है। बाबा के कपोलों पर इन अश्रु बिन्दुओं की ऐसी शोभा हो रही थी मानो कमल पत्रों पर जल बिन्दु शोभा पा रहे हों।

बालक को अपने जीवन की चरम एवं परम कृतकृत्यता का अनुभव हुआ। उसे लगा वह पढ़े न लिखे, सदा ही महामूर्ख बना रहे, जिससे संसार उसे किसी भी काम का नहीं समझ कर त्याग दे। बस, वह इन सन्यासी

गुरुदेव की भिक्षा में से दो रोटी खा ले और जीवन पर्यन्त अपने बाबा को पद गाकर सुनाता रहे। उसके बाबा इसी प्रकार सुनते-सुनते अश्रु बहाया करें। युग बीत जायें, जन्म बीत जायें।

आज बालक को विश्वास हो गया कि उसके बाबा के नेत्रों से जो अश्रु बहते हैं, वे पीड़ा के अश्रु नहीं,—प्रेम-सुख के आँसू हैं। प्रेम से ही उनके शरीर में, रोमाञ्च कँपकँपी, और स्वेद भी बहते हैं। उसे ऐसा अनुमान भी हो रहा था कि बाबा ने जो भूत-भूतनी की बात कही थी, वह भी मात्र उसे भयभीत करके कमरे में न आने देने के लिये कही थी। वे भूत-भूतनी राधा कृष्ण ही हैं। कोई पीड़ादायिनी प्रेत जाति की भूतनी उसके बाबा को सर्वथा ही आक्रान्त नहीं किये है।

बालक अपनी धुन में गा रहा है :-

नवल ब्रजराज को लाल ठाड़ो सखी
ललित संकेत वट निकट सौहे .. हो।

बालक के पिता, पितामह, वल्लभ सम्प्रदाय के मान्य कीर्त्तनिया हैं। अत: आनुवंशिकी से सुन-सुनकर उसे पद गायन की वंदिशें सहज हैं। बालक के पूर्वजों में श्रीगदाधर भट्ट नामक बहुत ही त्यागी भगवद्भक्त हो चुके हैं। बालक भी भट्ट वंश का ही है। यह उन्हीं गदाधर भट्ट का ही रचित पद है।

बालक के पद गायन की सुरीली ध्वनि सुनते-सुनते सन्यासी बाबा अपने भावराज्य में डूब गये हैं। उनके सम्मुख एक अति ही मनोहारी भाव-दृष्य झलमला रहा है। वह भाव दृष्य कोरी मन की उड़ान नहीं, किसी विलक्षण परम सत्य, सत्य के सत्य, प्रीति-राज्य का हृदय देश में अवतरण है।

"श्री यमुना जी के निर्मल तट पर, थोड़ा सा दूर, यमुना के सैकत भाग से किञ्चित् हटकर एक परम सुन्दर कुञ्ज है। उसमें रहती है एक ब्रजांगना।"

"विश्व में ही नहीं, अनन्त त्रिलोकियों में भी, यदि कोई सर्वाधिक सुन्दर है तो वे हैं श्रीकृष्ण। ये सौन्दर्य, माधुर्य, सर्व सद्गुणों की पराकाष्ठा श्रीकृष्ण भी जब इस ब्रजांगना के सौन्दर्य और प्रेमगुणों पर आकृष्ट हुए उस पर अपना सर्वस्व न्यौछावर करके लुब्ध हो रहे हैं, तो यह ब्रजांगना कैसी विलक्षण सुन्दरी है, इसका अनुमान ही किया जा सकता है। कोई भाग्यवान् श्रीकृष्ण

कृपापात्र जीव इसकी सुन्दरता की छाया को भी अपने नेत्रों से एक बार यदि देख ले तो उसका जीवन सदा-सदा के लिये कृत-कृत्य तथा सफल हो जावे।

परन्तु यदि उस वृजांगना से उसके मन की अनुभूति पूछी जाय, तो सुनो, बहुत शान्त चित्त से ध्यान देकर वह क्या कहती है :--

"प्रियतम ! प्राणाधिक हे !! चतुर चूड़ामणि, मेरे श्यामचन्द्र हे ! मैं तुम्हें क्या कहूँ ? मुझ अभागिन के पास बस, तुम्हारे अतिरिक्त और है ही क्या ? हे प्राणरमण ! तुम्हीं तो मेरी सम्पूर्ण सम्पत्ति हो, मेरे असंख्य प्राणों के रूप में तुम नील-सुन्दर ही तो हो।"

"हाँ ! एक वस्तु मेरे पास अवश्य थी, महा-महा-मलिन-कुरूपता। तन की कुरूपता, मन की कुरूपता (घोर मलिनता), यही मेरी अक्षय धनराशि मेरे पास थी। परन्तु नीलम हे ! तुमने मेरे उस महामलिन तन-मन को भी ज्यों का त्यों अपहृत कर लिया, और इस प्रकार जब मुझ अकिंचन के पास कुछ भी नहीं रहा तो प्राणरमण ! मेरे प्राणवल्लभ हे ! इतना सा ही भान है कि मेरे पास कुछ भी है तो मात्र तुम्हीं हो उसके ग्राहक और तुम ही हो वह वस्तु देने वाले।"

किसी आभीर वधू से उसने केवल कृष्ण नाम सुना है। साथ ही किसी ने इतना और कह दिया है कि वह गोपराज नन्द का पुत्र है। साथ ही वे ठिठोली करती कहती हैं कि यदि अकेली-दुकेली उससे कहीं उसकी भेंट हो गयी तो वह उसकी मान-मर्यादा एवं परलोक को भी बिगाड़ कर रख देगा। परन्तु निगोड़ी उसकी सम्पूर्ण ममता उसी नन्दतनय के चरण सरोरुहों में लिपटना चाहती है। प्राण न जाने क्यों उसी की एक झलक पाने को चरम एवं परम व्याकुल हुए हाहाकार करते रहते हैं। उसके एक क्षण के मिलन-सुख के सम्मुख उसे सागर समन्वित सम्पूर्ण धरा का एक छत्र और निर्विघ्न आधिपत्य, विघ्न बाधा शून्य पाताल की सुख सम्पदा, योग सिद्धियों की कौन कहे, जन्म-मृत्यु-विहीन ब्रह्मपद और मोक्षपद भी तुच्छाति तुच्छ लगते हैं। उसका सम्पूर्ण अनुराग एकत्रित हो गया है उन नीलसुन्दर की चरण-नख-मणियों में ही।

और देखो तो सही, क्या स्थिति हो गयी है उसकी। सर्वथा विस्मृत कर देती है वह पंच तत्वों से निर्मित अपनी देह को, मन की चंचल संकल्प-विकल्प करने वाली वृतियों को एवं रोगरूप भोग-सुखों को। इन तुच्छ वस्तुओं में तो अटकने का प्रश्न ही नहीं, वह तो उस नीलसुन्दर की स्मृति में

अपुनर्भव के महान् आनन्द को भी तुच्छ समझ कर बिसार चुकी हैं। इन सबसे सर्वथा विरक्त हुई वह अपने प्राणों के प्राण, प्रियतम इस साँवरे के आकर्षण की चुम्बकीय शक्ति से खिंची, घर-द्वार, माता-पिता, लोक-लाज एवं कुल-मर्यादा के दुर्लन्ध्य अवरोधों को लाँघकर इस निर्जन वन-पथ के किनारे निर्मित इस भग्न सी टूटी-फूटी कुटी में आ बैठी है।

इस यमुना तटवर्ती वन-पथ का चयन भी उसने इसीलिये किया है क्योंकि इस वन-पथ से ही उसका प्राणधन प्रतिदिन प्रातः वन में अपनी गायों को लेकर सखाओं सहित पदार्पण करता है और तब गायें चराकर इस वन-पथ से ही प्रायः सायंकाल लौटता है।

उस अपने नीलमयंक प्रियतम का युग-युगान्तरों से चिरवांछित दर्शन, चिर अभिलषित संस्पर्श एवं उसकी मधुस्यंदिनी प्रेमगिरा का उसके कर्णपुटों में रस-सिंचन कब और कैसे प्राप्त होगा, उसके वदन-सरोज के दर्शन-जन्य अपरिसीम वक्र एवं उच्छलित आनन्दोदधि की अमित, अमाप, उत्ताल तरंगों में वह कब डूबे-उतरायेगी - यही उसकी सर्वाधिक चिन्ता के अधुनातन विषय हैं।

वह उदास चित्त बैठी रहती है, यमुना तट पर। यमुना ही उसकी एक मात्र आश्रयदातृ सखी है। वह अपने अमिलन की वेदना ज्वाला की महान व्यथा-कथा जब यमुना सखी को निवेदित करती है, तब अपने दिव्यातिदिव्य परिवेश में यमुना सखी सदेह उसके सम्मुख प्रकट हो जाती हैं। वे आश्वासन देती हैं कि शीघ्रातिशीघ्र ही उसका प्रियतम मिलन संघटित होगा। यह असंभव है कि वह मिलन होकर न रहे।

वह इसी आश्वासन से थोड़ी हरी होती है। परन्तु जब पुनः दिवस का अवसान हो जाता है, तो वह सर्वथा अन्यमनस्क होकर अपनी भग्न कुटिया की गोबर लिपी भूमि में लुंठित हो जाती है। उसका धैर्य मानो समाप्त हो जाता है। प्राण आकुल हो उठते हैं। उसके शरीर का भान ही छूट जाता है।

संध्या अपने सख्य परिवेश में उसके सम्मुख आती है। उस एकाकिनी को निमीलित नेत्र, निज आनन-सरोज को कर पल्लवों पर टिकाये, अपने प्राण सर्वस्व के ध्यान में अवस्थित देखती है तो औदास्य की रेखायें उसके मुख सरोज को भी आवृत कर लेती हैं। संध्या आती है उसके पास उल्लास में भरी हुई, परन्तु उसकी दशा देखकर वेदना की व्यथा लिये चुपचाप लौट जाती है।

अब कृष्ण निशा आती है। वह उसके गले में आलिंगन दे कर उसे उठाती है, शय्या में सुलाती है। परन्तु उसके नयनों में निद्रा कहाँ ? वह निशा की ओढ़नी में जड़ी हीरक तारावली की गणना करती काल बिता देती है। पहरुआ पक्षी ब्रह्ममुहूर्त्त के होने की जब सूचना देने लगता है तब उसे लगता है उसके सपनों को भी पाप लग गया है। आँख ही जब नहीं झपकेगी तो स्वप्न कहाँ से आयेंगे ? परन्तु आशा साथ नहीं छोड़ती। लगता है ब्राह्म-मुहूर्त्त में संभव है वे नन्दभवन से उठकर उसके पास चले आवें। परन्तु जब रवि उदयाचल से अपना लाल-लाल मुख दिखाने लगता है तो यह आशा भी टूट जाती है।

वह नीलगगन को देखती है, उमड़ते कृष्ण मेघों से वार्त्ता करती हैं, उनके द्वारा प्रियतम तक अपनी उर व्यथा पहुँचा देने का प्रस्ताव करती है।

दीर्घश्वास उसकी चिरसंगिनी हो गयी है। फूत्कार भी अरुणिम अधरों पर सहचरी के रूप में व्यक्त होती रहती है। उसकी कुञ्चित केशराशि सर्वथा रुक्ष, अस्तव्यस्त एवं धूलि में सनी रहती है। विलेपन आदि का तो प्रश्न ही नहीं। उसका गात्र अस्थिपंजर मात्र रह गया है। मुख-सरोज मुरझाया रहता है, कलेवर मात्र दैन्य का प्रतिरूप भर है। उसे न भोजन ही का ध्यान है, न जल पीने ही की सुधि रहती है। अत्यन्तिक वेदना की मूर्तिमती वह तमाल वृक्ष के तने को पकड़े, उसे हृदय से लिपटाये अपने प्रीति मनोरथों में ही डूबी रहती है।

दिन रात उसके मुख से ये दो पंक्तियाँ निकलती रहती हैं :--

कहाँ जाऊँ कैसे पाऊँ व्रजेन्द्र नन्दन ।
तन-मन प्राण चित सर्वस्व हरण ।
किसे कहूँ कौन सुने मेरी कथा ।
विरही प्राणों की मर्म व्यथा .. ।

कभी निर्निमेष नेत्रों से शून्य की ओर ताकती हुई बोल उठती है - "हाय ! हाय !! मेरे पास तो इस अश्रुकणावली के अतिरिक्त और कोई सम्पत्ति भी तो नहीं है। कभी कुछ था भी नहीं और होगा भी कहाँ से ? फिर इन नीरकणों के बदले मुझ महापातकी, भू-भार, दीना को भला वे क्यों अंगीकार करेंगे ? हाय ! हाय ! प्राणरमण ! तुम्हारे प्रति मेरा यह अदम्य आकर्षण क्यों

हो गया है ? इस प्राणोन्माद को अब मुझे ही भोगना है। दूसरा भला मेरी व्यथा को कैसे बँटाये।"

इस विषम विरह दशा से आकुल रसमयी बाला अभी-अभी यमुना से लौटी है। यमुना की कृष्ण लोल लहरों ने उसे उमड़-उमड़ कर परिस्नात कराया है। वह कुंज में खड़ी अपने केश सुखा रही है। हृदय में अतिशय हाहाकार है और विरह की अग्नि सर्वांगों को जला रही है।

इतने में ही उसके कानों में संगीत की अमृत ध्वनि पड़ती है। कोई गायक सुदूर कहीं गाता हुआ बहुत ही भाव भरे बोल सुना रहा है :--

नवल व्रजराज को लाल ठाड़ौ सखी
ललित संकेत वट निकट सोहै री !
देख री देख अनिमेष या वेष कौं
मुकुट की लटक त्रिभुवन जू मोहै री !!

इस परम आशा बँधाते पद-गायन को सुनकर वह ठगी सी रह गयी है। उसके हाथ केश सुखाने की क्रिया स्थगित कर देते हैं। वे स्तंभित हो जाते हैं। साड़ी भी अस्तव्यस्त किसी भी प्रकार से तन पर लपेटी ही हुई है। कंचुकी पहनने का तो प्रश्न ही नहीं है। उसके उरोज मात्र साड़ी से ही आच्छादित हैं। अति मधुर स्वर में भाव-भरा कोई गाये जा रहा है।

स्वेद-कण झलक कछु झुकी सी रहत पलक,
प्रेम की ललक रस रास कीयें... ।

उसके नेत्र इस पद गायन "देख री देख अनिमेष या वेष कौं" के उद्‌बोधन पर सामने उठ जाते हैं। उसकी कुटिया से किंचित् दूरी पर ही तो वट वृक्ष है। क्या सचमुच ही वट के निकट उसके प्राणधन आ गये ? वह वृक्ष की ओर नेत्र उठाती है। सचमुच ही वट-वृक्ष के नीचे खड़े उसके प्राणधन उसे दिखाई पड़ जाते हैं।

अहा! क्या रूप है ? इनका भृकुटि-विलास, इनके आकर्ण-विलम्बी दीर्घ नेत्र, नेत्रों की चपलता, घुँघराली कुंचित कुन्तल राशि, जानु-विलम्बित भुजाएँ, विशाल स्कन्धदेश, श्रीअंगों की संविन्मय सुवास, ग्रीवा में झूलती कमनीय वनमाला, वनमाला की अति उन्मादी महक, सभी तो परम मनोहर हैं। यह

ऐसा मनोहारी सौन्दर्य है कि देखनेवाले, देखनेवाली का सब कुछ हरण कर लेता है।

वह अनुमान करती है कि अवश्यमेव गोष्ठ से वन की ओर जाते हुए ही यह यहाँ आकर इस वट-वृक्ष के नीचे खड़ा हुआ होगा, तभी न नेत्रों की पलकों के ऊपर स्वेदकण झलमला रहे हैं। अहा, इसकी ये पलकें भी कैसी सुकोमल हैं। हाय, ये पलकें अपनी अतिशय सुकुमारता के कारण नन्हीं-नन्हीं स्वेद की दो बूँदों का भार भी नहीं सह पा रही हैं, और इन स्वेद बूँदों के भार से ही थोड़ी झुक गयीं हैं। अहा ! इसके उत्फुल्ल वदनारविन्द को देखकर तो यही लगता है कि एक बार ही नहीं, हजारों-लाखों-बार अपने प्राणों को उस पर न्यौछावर करती जावे और उवाँर कर यमुना में फेंकती जावे।

अहा, इसके सौन्दर्य-कोष-रूप-चिबुक, बिम्बारुण अधरोष्ठ, सुढ़ाम धवल दंत-पंक्ति, मनोहारी हास्य-छटा, सभी से विशुद्ध प्रीति झर रही है। किसी भी निर्झर के पीछे कहीं उसके मूल देश में अखण्ड जल-स्रोत होता है, तभी न अनवरत जल की धारा उसमें से फूटती रहती है। इस किशोर के भी हृदय कोश में प्रीति ही प्रीति लबालब भरी है, तब न इसके नेत्र इस प्रकार प्रेम वर्षा कर रहे हैं। उभरे हुए अरुणिम कपोल, मणिजटित झिलमिल करते कर्ण कुण्डल, भाल पर सुशोभित गोरोचन का तिलक, कण्ठ में गुञ्जामाल, सरसिज सुमनों का हार, सुमनों पर गुन-गुन कर रही भ्रमर पंक्ति, सर्वत्र प्रीति सरस सरसतर होती प्रवाहित हो रही है।

कटि-देश, सुन्दर उदर, उदर पर विराजित त्रिवली, गंभीर-नाभि, श्रवणेन्द्रियाँ और सुघड़ नासिका, इसके सभी अंग प्रकृति के परे किसी अभिनव उपादान से निर्मित हैं।

सम्पूर्ण श्रृंगार, सम्पूर्ण आभरण, कटि-किंकणी की झंकृति, पद-नुपूरों का छमछम रव सम्पूर्ण वातावरण को प्रीतिपूर बना दे रहा है। कोटि-मदन-मदहारी श्रीअंगों का श्याम-वर्ण-सौष्ठव, समग्र विश्व के नयनों को सुख देने वाले सौन्दर्य का आगार, कितना अप्रतिम है यह।

क्या यह नीलमयंक ही गोपवधुओं से, व्रजकुमारियों से औद्धत्य करने वाला धृष्ट नन्दतनूज है ? समग्र वृन्दावन में असंख्य रस-विलास का कर्त्ता क्या यही नन्दतनय है ? अवश्यमेव यही मेरी प्राण-संजीवनी है।

छुप-छुप कर आँखें फेंक कर उसने इतना सब निरखा परखा तो, परन्तु सहसा उसकी आँखें उस नीलमयंक से मिल जाती हैं। चार आँखें होते ही वह

लज्जा से सिहर उठती है। न चाहते हुए भी उसकी आँखें नीचे उसके चरणों की भूमि पर झुक कर गड़ जाती हैं। हाय रे कैसी नारी जनित लज्जा है, वह उसे जी भर एक टक देख भी नहीं सकती। कितनी देर तक निगोड़ी आँखें झुकी रहीं, लज्जा उन्हें घेरे रही, और वह धरा पर दृष्टि गड़ाये धरा कुरेदती खड़ी रही। जब दुबारा साहस कर वहे नयन उठाती है, तब तक तो वह नीलमयंक वन-पथ से संभव है गोष्ठ की ओर पलायन कर जाता है।

अथाह हाहाकार से उसका हृदय भर जाता है। व्याकुलता की सीमा लाँघकर विरहाग्नि उसके सम्पूर्ण वदन को आवृत कर लेती है। हाय ! मात्र दो क्षण ही वह दृष्टि पथ में आया और चला गया। कहाँ गया वह, किस पथ से गया, उसके चरण चिन्ह तो अवश्य ही धरा पर अंकित मिलेंगे ही। उन चिन्हों पर ही अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दूँ ? हाय ! जाऊँ, उसकी चरण रज बटोरूँ और अपने को आपाद मस्तक उससे नहलाऊँ। उसे ढूँढूँ तो सही । यदि आसपास ही वह छुपा होगा तो ? मुझे इस प्रकार निर्लज्जता से ढूँढ़ता देख लेगा तो ... तब तो प्रीति चौड़े आ जायगी। वह पैर उठाना चाहती है, परन्तु पुनः लज्जावश पैर उठते नहीं। उसके चरण ही धरा देवी मानों जकड़ लेती है। वह लज्जा विजड़ित खड़ी की खड़ी रह जाती है।

गायन की आवाज उसके कानों में अमृत उँड़ेल रही है।

परम अदभुत रूप सकल सुख भूप यह
नन्दनन्दन बिना कछु न भावै हो ..।
धन्य हरि भक्त जिनकी कृपा तें सदा...
कृष्ण-गुण गदाधर भट्ट गावै हो ...।

बालक के बाबा यंत्र चालित से लाईब्रेरी के कमरे से निकल नोहरे में लाइब्रेरी के सामने के कमरे में आ गये हैं। बालक के नयन मुँदे हैं। बालक की प्रकृति ही ऐसी नटखट है कि वह तुलसीदासजी की कविता को "ज्यौं त्यौं तुलसी कृपालु" के स्थान पर "ज्यों त्यों नटवर कृपालु चरण-शरण पावै" करके गाता है। इसी प्रकार इस गदाधर भट्ट के पद को भी उसने बदल कर गाना प्रारंभ किया है। वह नेत्र मूँदे गा रहा है :--

धन्य हरि भक्त बाबा कृपा तें सदा
कृष्णगुण नटवरिया दुष्ट गावै हो

बालक द्वारा गदाधर भट्ट के परम पुनीत नाम को उसके नाम से बदले जाने पर उसके बाबा मुसका पड़ते हैं। वे उसके हारमोनियम की कुञ्जी पर अपने हाथ रख देते हैं। उनके हाथ रखने से हारमोनियम के बहुत से मंद तीव्र स्वर एक साथ बज उठते हैं। बालक ने अपनी आँखें खोल दी हैं। वह कुछ भी बोला नहीं। उसका कण्ठ गदगद है। अपने बाबा के चरणों में वह प्रणाम करता है, उनके चरणों की धूलि सिर पर ड़ालता है और उठकर चल देता है।

(सन् १९४८ ई० के दिसम्बर मास में बालक राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ का कार्य छोड़कर गोरखपुर आ गया था। उस समय उसने अपनी कुछ परमार्थिक अनुभूतियाँ परम पूज्य गुरुदेव के समक्ष रखीं थीं। तब पू. गुरुदेव ने यह सब प्रसंग बताकर उससे कहा था कि उसके जीवन में रस-भाव के बीज तो उन्होंने बहुत निरे जब वह ग्यारह वर्ष का बालक था और उन्हें पद सुनाया करता था तथा 'राधा राधा' कहकर पिटाई का खेल खेलता था तभी डाल दिये थे। वे अब पुष्पित हो रहे हैं, इसे जानकर उन्हें हर्ष है। परन्तु अभी उसे प्रवृत्ति मार्ग का सर्वथा त्याग नहीं करना है। उन्हीं दिनों यह सारा प्रसंग और उस प्रसंग पर होने वाली अपनी लीलानुभूति का वर्णन भी उन्होंने किया था, जो इस प्रसंग में वर्णित है।)

राधाष्टमी उत्सव

(यह घटना सन् १९४९ ई० की या १९५१ ई० की है। मैंने पू० गुरुदेव से प्रश्न किया था, "बाबा ! आपको भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन तो श्रीपोद्दार महाराज ने चरण स्पर्श करके कराये। श्रीराधारानी के दर्शन प्रथम बार आपको कैसे एवं कहाँ हुए ? इस पर उन्होंने जो लीला बतायी, वह विस्तार से लिखी जा रही है।)

पू० गुरुदेव को राधाष्टमी के व्रत का पहले ज्ञान ही नहीं था। सन् १९४० ई० में वे राधाष्टमी के दिन दिल्ली में श्रीमथुरानाथजी के (सद्गृहस्थ के) घर पर ठहरे थे, वहीं उनकी भिक्षा की व्यवस्था थी। श्रीमथुरानाथजी की पत्नी ने उनसे पूछा "आज राधाष्टमी है आप फलाहार करेंगे या अन्नाहार?"

पू० गुरुदेव ने फलाहार (शाकाहार) करने का ही निर्णय किया। जब भिक्षा आयी तो पू. गुरुदेव ने मानसिक पूजा सम्पन्न की तथा भोग लगाकर शाकाहार भिक्षा कर ली। यह उनकी प्रथम राधाष्टमी मनायी गयी थी। दूसरे वर्ष राधाष्टमी के दिन वे रतनगढ़ में ही थे। राधाष्टमी के प्रसाद के लिये प० पू० गुरुदेव ने श्रीपोद्दार महाराज से मात्र दो रुपये माँगे। श्रीपोद्दार महाराज ने ये दो रुपये भी उन्हें यह कहकर नहीं दिये कि बाबा उनकी आर्थिक स्थिति तो जानते हैं नहीं, माँग करते रहते हैं। पू० गुरुदेव का बाह्य प्रापंचिक मन इससे थोड़ा व्यथित हुआ। परन्तु उन्होंने मन में समाधान कर लिया कि वे तो सन्यासी हैं। उन्हें बाह्य प्रपंच के व्यवहार से दुखी-सुखी नहीं होना चाहिये। प्रपंच की तो गति ही ऐसी है।

अचानक श्रीमोतीजी पारीक ने प्रस्ताव किया कि उनके घर में गाय है और वे दूध का शुद्ध मावा बनाकर पेड़े ला देंगे। इनका भोग लगा दिया जाय। यथा समय मोतीजी पेड़े ले आते हैं। ठीक मध्याह्न के समय पू० गुरुदेव अपने निवास कक्ष में ही पूजा सम्पन्न करते हैं। श्रीमोतीजी ने केसरिया पेड़े बनाये हैं और उस पर श्रीकृष्ण के वर्ण का पिश्ताचूर्ण जड़ दिया है। पेड़ों पर आलू को काटकर उसका संचा बनाकर "राधा, राधा" नाम अंकित कर दिया है। पूजा के पश्चात् इन्हीं पेड़ों का भोग लगा दिया जाता है।

प्रपंच के प्राकृत धरातल पर तो इस वर्ष पूजा का यही क्रम हुआ है। आओ अब अप्राकृत भाव धरातल पर चलें।

पूजा सम्पन्न करके पू० गुरुदेव शरीराध्यास रहित अवस्था में शान्त बैठे हैं। वे देख रहे हैं कि उनका हृदय सहज स्वतंत्र हो रहा है। वह सर्वथा खाली है। सहज भाव से ही उनकी दृष्टि श्रीपोद्दारजी की हवेली की ओर जाती है। उन्हें आभास होता है मानो श्रीपोद्दार महाराज मुख्य द्वार से अपनी हवेली में प्रवेश के लिये सीढ़ियाँ चढ़ रहे हैं। परन्तु ये क्या ? ये तो श्रीपोद्दारजी के स्थान पर भगवती श्रीराधा हैं ?

अहा, क्या ही त्रिभुवन मोहिनी मुसकान है। पिंगलवर्ण श्रीअंग शोभा के निर्झर हैं। नवनीरद वर्ण लहँगा और रक्तवर्ण कंचुकी धारण की हुई है। शुद्ध जरी से खचित और अनमोल मोतियों एवं विविध रत्नों से जटित हरिताभ वर्ण की ओढ़नी विलक्षण शोभा सर्वत्र प्रसारित कर रही है। किंकिणी कटि प्रान्त का स्पर्श पाकर सौभाग्यवती हो उठी है और मंजीर झंकार कर रही है, चरण सरोजों में। भाल पर सजी है मृगमद बिन्दुओं की मरवट और कुञ्चित

केशराशि वेणी में निबद्ध हुई पीठ पर लहरा रही है। मणिमय चन्द्रिका मस्तक पर शोभित है तथा रत्नहारों से वक्षस्थल भरा है। सर्वोपरि सुन्दर सुमनों से गुम्फित है वनमाला। मुखमण्डल का लावण्य, मधुरिमा, सरसता, कोमलता एवं कान्ति कैसी है, कौन बतावे। कोटि-कोटि मन्मथ इनके एक रोम के लावण्य पर न्यौछावर हैं। बिम्ब-बिडम्बी अधरों पर मधुर स्मित की स्फुट रेख नित्य व्यक्त है। अप्रतिम हैं इसकी मादकता। अरे कर्णस्पर्शी विशाल नयनों की बंकिम चितवन ही वह जाल है जिसमें नन्दनन्दन त्रिभुवनमोहन, मुनिमन-मोहन, सर्वविमोहन, चर-अचर मोहन श्रीकृष्ण नित्य आबद्ध रहते हैं।

पू० गुरुदेव विस्फारित चकित खुले नेत्रों से देख रहे हैं। एक क्षण के सौवें हिस्से में तो उन्हें श्रीपोद्दार माहराज दिखते हैं और दूसरे ही क्षण असमोर्ध्व अचिन्त्य सुन्दरी श्री राधारानी।

सहसा पू० गुरुदेव के कानों में अतिशय मधुर स्वर गूँज उठता है। "देखो ! आज वृषभानुपुर में राधारानी का जन्मोत्सव हो रहा है। देखो ! देखो !! क्या ही मनोरम दृष्य है। इस रतनगढ़ की धरा का भाग्य ही अप्रतिम है। इस हवेली की धरणी का कैसा सौभाग्य है कि इसने श्रीराधारानी के चरणों को अपनी पपनियों से छू लिया, छूकर धन्य-धन्य हो गयी है।

और पू० गुरुदेव भावदेह से नहीं अपनी पांचभौतिक देह के चर्मचक्षुओं से प्रत्यक्ष देख रहे थे - "श्रीपोद्दारजी की हवेली के स्थान पर विशाल दिव्य अप्राकृत अनन्त वैभवों का आगार वृषभानुपर। फिर उनके सम्मुख व्यक्त हुआ श्रीवृषभानु बाबा का सर्वसम्पदा सम्पन्न अलौकिक महल, और तब व्यक्त हुई वृषभानु बाबा की वह सम्पदा जिसके सम्मुख, वैकुण्ठ, कैलास और त्रिलोकी का वैभव तुच्छ प्रतीत होता है।"

पू० गुरुदेव के सम्मुख बाबा वृषभानुजी की यशस्विता, उनकी अपार गरिमा, उनके श्रीअंगों का अप्राकृत दिव्य सौष्ठव सब इस प्रकार मूर्त हो रहा था कि वे रह-रहकर चमत्कृत एवं रोमाञ्चित हो रहे थे। सब कुछ अतुलनीय था, और आश्चर्य यह था कि सब कुछ पू. गुरुदेव अपने चर्मचक्षुओं से देख रहे थे।

नियम हुतौ गुन देह में महाभाव नहि हौन।
मेरे हित पिय साँवरो सोऊ कीनो गौन ।।

यह नियम है कि सत्व-रज एवं तमोमय इस त्रिगुणात्मक शरीर में महाभावात्मक चिन्मय स्थिति का अवतरण नहीं होता, पर उन प्रियतम श्रीकृष्ण ने अपना नियम पू० गुरुदेव के लिये बदल दिया, और वह कर दिया, जिसे जगत् में असंभव माना-समझा जाता है। इतना ही नहीं, उन प्रियतम साँवर ने स्वयं को पू० गुरुदेव के हाथों में सौंप दिया। यह उनके प्यार की पराकाष्ठा थी।

पू० गुरुदेव को जिस वृषभानुपुर की शोभा का दर्शन हुआ उसके पश्चिम दिशा में यमुनाजी बहती थीं। अब तो यमुना बहुत दूर है, उन्होंने रास्ता बदल दिया है।

पूरब की शिखरावलि-मण्डित गिरि था सीमा रचता प्रियतम !
कानन से जुडी प्रतीची में प्रसरित नीली सरिता प्रियतम !
सुविक्षाल राजपथ उत्तर में द्रुम जालों से छाया प्रियतम !
चलकर कोसों तक छू लेता उस शैल रत्नमय को प्रियतम !

प्राकृत मन से अप्राकृत वस्तु को देखा जाना संभव ही नहीं है। पू० गुरुदेव के शरीर का मन भी प्राकृत था, बुद्धि भी प्राकृत थी। माया जगत के शब्द-स्पर्श-रूप-रस-गंध मायातीत जगत के शब्द स्पर्श, रूप, रस, गंध से सर्वथा भिन्न हैं, माया-जगत की इन्द्रियों से वे सर्वथा अग्राह्य हैं। इन इन्द्रियों की वहाँ गति नहीं। परन्तु पू० गुरुदेव की इन्द्रियाँ एवं मन तो इस दृश्य के प्रकट होने के पूर्व ही समाप्त हो गये था। पूर्व पृष्ठों में इसका उल्लेख भी है कि देहाध्यास रहित हुआ पू० गुरुदेव का मन सर्वथा खाली शून्य हो गया था। जहाँ इस प्राकृत मन की समाप्ति हुई, वहीं वह अप्राकृत राज्य भगवत्कृपा से स्वतः अवतरित हो जाता है। यह किसी भी पुरुषार्थ द्वारा साध्य नहीं। यदि कोई अपने को सर्वथा भगवान पर ढ़ार देता है तो भगवान् उसकी कामना अवश्य पूरी कर देते हैं। भगवान् बहुत ही उदार हैं। भगवान् कभी किसी की आशा खण्डित नहीं करते हैं। अप्राकृत राज्य में प्रवेश का एक मात्र साधन है, भगवत्कृपा पर निर्भरता।

पू० गुरुदेव का प्राकृत मन विलीन हो गया था महाभाव स्वरूपा वृषभानु नन्दिनी में जो सम्पूर्ण सौन्दर्य माधुर्य, ऐश्वर्य, की आधार हैं, सार स्वरूपा हैं। पू० गुरुदेव महासत्व में निमज्जित हुए उस अलौकिक लीला-सुख का मूकास्वादनवत् आस्वाद ले रहे थे जो लीला उस दिवस राधारानी के जन्मोत्सव को हेतु बनाकर श्रीपोद्दार महाराज की हवेली की भूमि में अवतरित हो रही थी।

उस दिवस राधारानी के जन्म को हेतु बनाकर उस हवेली की भूमि में यश की, ज्ञान की, प्रेम की, वैभव की, धर्म की, दानशीलता की आनन्द की एवं उमंग की तथा उत्साह की ऐसी ध्वजा फहरा रही थी जिसकी तुलना कहीं भी नहीं हो सकती।

सतत लीला चिन्तन के पश्चात् एक ऐसी स्थिति आती है जहाँ मन मन नहीं रह जाता। महाभाव सिन्धु में जब मन विलीन ही हो गया तो फिर मन रहा ही कहाँ ? सिन्धु में बिन्दु मिलकर सिन्धु ही तो हो गया।

देखो कैसे कह दूँ सब कुछ है बात बड़ी लम्बी प्रियतम !
आगे जाकर जो डूब गयी, फिरती है क्या पीछे प्रियतम !!

पू० गुरुदेव को जो उस दिन सुख-वैभव के दर्शन हुए उस सुख-वैभव को प्राप्त करना तो दूर उसकी कल्पना भी न कभी किसी अमरेन्द्र को हुई है न दानवेन्द्र को और न ही किसी मानवेन्द्र को, फिर उसके प्राप्त होने का तो प्रश्न ही नहीं है।

पू० गुरुदेव उस समय जाग्रत थे, यह भी कहते नहीं बनता, उसको स्वप्नावस्था भी नहीं कही जा सकती, और सुषुति तो वह थी ही नहीं। जाग्रत स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों ही दशाओं से परे की वह अवस्था थी। फिर पू० गुरुदेव को दर्शन होते हैं यशोदा रानी के। यशोदा मैया की आँखें कैसी सजल हो रही हैं। यशोदारानी के पास में ही व्रजचन्द्रमा नीलमणि किस प्रकार सजे खड़े हैं। इनके नेत्र सरोज कैसे उत्फुल्ल हैं ? इतना आनन्द और ऐसा उल्लास जैसा आज इनके नयनों में भरा है, वैसा तो विरल ही दिखायी पड़ता है। व्रज चन्द्रमा तो इतने प्रसन्न हैं मानो उनका मंगल परिणयोत्सव आज ही हो। और मानो आज ही नहीं अभी-अभी सम्पन्न होने जा रहा हो। चिर

काल से अभिलषित उनका प्रेम-मनोरथ बस, आज अभी पूर्ण होने जा रहा हो।

इतने में ही लो, जन्म के समय का धौंसा बज उठा। दुंदुभी निनादित हो उठी। नगाड़े मानो मूर्तिमान हुए नाच रहे हों, इस प्रकार विलक्षण ध्वनि उनसे निकल रही थी। और कर्णेन्द्रियों को ऐसा स्वर तो सुनने को ही नहीं मिला, जैसी शहनाई की धुनि हो रही थी। और नर्तक नट, कैसा हावभावपूर्ण नृत्य कर रहे थे।

पू० गुरुदेव के सम्मुख एक-एक दृष्य, एक-एक आकृति सर्वथा सुस्पष्ट हो रही थी। 'लो, 'कीर्तिदा मैया के भी दर्शन करो, रोम-रोम उनका आनन्दोदधि में उछाल ले रहा है। देखो तीनों बहनें, कीर्तिदा, शारदा, एवं कीर्तिमती साथ ही यशोदाजी एवं रोहिणीजी, मयूरासन पर विराजे, मुसकाते नन्दनन्दन और राधारानी की आरती कर रही हैं। और देखो ! इन ऋषियों की कतार कैसी गरिमामयी है। भागुरि ऋषि के नेतृत्व में सभी महर्षि, ब्रह्मर्षि, वेदर्षि इकट्ठे हो गये हैं। सभी के चरणों की धूलि लेकर यशोदारानी अपने लाली-लाला पर वार रहीं हैं।"

"यह जन्मोत्सव हो रहा है वृषभानुपुर में, परन्तु सभी उत्सव की प्रमुख संचालिका शक्ति हाथ में लिये हैं नन्दराय बाबा। अहा ! यशोदा रानी तो आनन्द में इतनी उन्मत्त हैं कि उन्हें जैसे व्यवहार-ज्ञान ही नहीं रहा है। उन्मादिनी सी हुई वे अपने रत्नहारों से भरी पेटियाँ खोल-खोल कर लुटा रही हैं। इधर नन्दजी मुक्ता-माणिक, पन्ने, हीरे इस प्रकार दान दे रहे हैं, जैसे कोई कंकर पत्थर लुटा रहा हो। मैया तो अपना समग्र गोधन, गजधन, वाजिधन, रत्नधन, स्वर्ण, रजत, ताम्रादि धातुएँ, अन्न-भण्डार लुटा देने पर ही जैसे आतुर हो रही हैं।"

"लो, अब तो नन्दरानी अपने पहने हुए हार, कर्णफूल, नाक का हीरा, अपने सिरोभूषण, अपने कण्ठहार, करधनी, सभी उतार कर देने लगीं।"

"श्रीरोहिणी को जैसे ही यह सूचना मिलती है, वे बलरामजी सहित दौड़ी आती हैं, मैया को सौभाग्य भूषण दान न देने की वर्जना करती, वे पुनः सभी आभूषण उन्हें पहना देती हैं। मैया तो इतनी उत्साहित हैं और ऐसा उन्मत्त आचरण कर रही हैं, मानो मदिरा पान किये हों, उनकी दानशीलता विराम ही नहीं पा रही है।"

"अति गरिमा से द्विजवृन्द देवाराधन में लग गये हैं। महागणेश की पूजा प्रारंभ हो गयी है। इसके पश्चात् पूजन होगा, भगवान् दक्षिणामूर्त्ति का और तब पूजित होंगे भगवान लक्ष्मीनारायण, भगवती आदिशक्ति जगज्जननी त्रिपुर सुन्दरी, कामेश्वर-कामेश्वरी युगल रूप में, फिर भगवान शंकर-पार्वती का अभिषेक होगा, और तब पूजित होंगे भगवान सूर्यदेव।"

"नन्दबाबा तो सबके चरण पखारने में ही लगे हैं। उनकी पगड़ी तो अपने मस्तक पर रह ही नहीं पाती। कभी किसी के चरणों में रखते हैं, कभी किसी के चरणों में। हाथ बाँध, वे दैन्य मूर्त्ति सबका स्वागत-सत्कार कर रहे हैं।"

"और नन्दनन्दन को कहाँ धैर्य है। वह तो अपनी कल्पप्रसून प्रिया पर भ्रमर हुआ मँडरा रहा है। जहाँ वह जाती है, उसके पीछे-पीछे उसकी छाया बना दौड़ रहा है। उसके रोम-रोम से अनन्त आनन्द-सुरसरियाँ प्रवाहित हो रही हैं।"

"और महर्षि दुर्वासा, अत्रि, अगस्त्य, वशिष्ट, विश्वामित्र, सभी राधा-साँवरी युगल जोड़ी को स्वस्तिवाचन पूर्वक आशीर्वाद दे रहे हैं। ये तत्वज्ञ ऋषि प्राणप्यारे नन्दनन्दन और प्यारी दुलारी राधाकिशोरी को भगवान विश्वेश्वर और उनकी संचालनकर्त्री महाशक्ति कह कर बखान कर रहे हैं। कोई रानी को परा-अपरा प्रकृति कह रहा है और कोई ब्रह्मशक्ति बता रहा है। "अरे वृषभानु ! ओ नन्दराय !! यह तुम्हारे घर में पूर्ण ब्रह्म परमात्मा अवतरित हुआ है। यह परम तत्व है, वेदों का सार-सर्वस्व है। और यह राधा इस विश्व प्रपंच की आधार शक्ति, अघटन-घटना-पटीयसी, असंभव को संभव करने वाली भगवती योगमाया है। यही चर-अचर अनन्त प्राणियों की माला पहने परा देवी हैं।"

"और देखो ! इन महर्षियों की स्तुति करते समय जो दाढ़ी हिल रही है, उसे देख-देखकर अपने बाबा की गोद में बैठे नन्दनन्दन हँस रहे हैं और अपने बाबा से कितनी मुग्धता का प्रकाश करते पूछ रहे हैं -- "बाबा इन ऋषिगणों का तात्पर्य क्या है ?"

"और यद्यपि ऋषियों की बात नन्दबाबा एवं वृषभानुजी के गले तो नहीं उतरती फिर भी वे सबको सिर नवा-नवा कर प्रणाम कर-करके अपनी कृतज्ञता प्रकाश कर रहे हैं।"

"ब्रह्मर्षिगण अपने तत्व के प्रकाश में समाधिस्थ से हो रहे हैं। तत्व सिन्धु की लहरें उछल-उछलकर इन्हें अपने आवर्त्तों में नचा रही हैं।"

"श्रीगर्गाचार्य तो इस आवर्त-सिन्धु में पूरे ही डूब गये हैं, इन्हें तो गोप उठाकर अपने आश्रम पहुँचाने जा रहे हैं। लो, अर्चना क्रम के पूर्ण होते ही रंगमंच पर गोप आ गये हैं। नन्दभवन और वृषभानुपुर के गोप इस प्रकार नाच-नाचकर "राधा, राधा" नाम ध्वनि कर रहे हैं जिससे सर्वत्र आनन्द ही आनन्द प्रवाहित होने लगा है।"

यह उत्सवानन्द क्षण-क्षण नित्य-नवनवायमान वेग से चल रहा था, इतने में ही पू० गुरुदेव को श्रीपोद्दारजी की अति तेज पुकार सुनाई पड़ी। "दुलीचन्द ! भाया बाबा ने भिक्षा कोनी करायी, दो बज रह्या है।" और फिर वे जोर से पू० गुरुदेव को सम्बोधित कर कह उठे -- "बाबा ! आप भिक्षा कर लीजिये।"

उसी समय सम्पूर्ण दृश्य तिरोहित हो गया। पोद्दार महाराज और उनकी हवेली साथ ही प्रपंच का सब दृश्य पू. गुरुदेव के सामने ज्यों का त्यों व्यक्त हो गया। पू० पोद्दार महाराज की कोठी के मुख्य द्वार के बाँयी ओर एक बारामदा और कमरा था, पू० गुरुदेव बारामदे में ही बैठकर उन दिनों भिक्षा किया करते थे। श्री पोद्दार महाराज दाहिनी ओर के बड़े कमरे में अपना सम्पादकीय कार्य करते रहते थे।

पू० गुरुदेव भिक्षा करने लगे परन्तु रह-रहकर उनकी दृष्टि सामने बड़े कमरे में काम करते श्रीपोद्दार महाराज पर जा रही थी। और उनके स्थान पर उन्हें वहीं श्रीराधारानी की विलक्षण छबि दिख रही थी।

अहा ! उनके मस्तक पर पीछे शीश फूल नामक आभूषण शोभा दे रहा है। आगे चूड़ामणि चन्द्रिका है और ललाट पर तिलक के स्थान पर गोल कुंकुम की बडी बिंदी है।

उनकी उस समय ऐसी शोभा दिख रही है मानो स्वर्ण-शेखर सुमेरु के ऊपर पूर्ण राकाचन्द्र एवं भगवान् सूर्यदेव दोनों विराजित हों। शीशफूल में जो वज्रमणियाँ जटित हैं, वे सूर्यदेव की तरह लग रही हैं और लाल कुंकुम की बिन्दी राकाशशि की शोभा को हतप्रभ कर दे रही है।

पोद्दार महाराज प्रूफ देख रहे हैं और वे प्रूफ देखते-देखते ही पू० गुरुदेव पर अपनी तिरछी चितवन की दृष्टि डालते हैं। अहा ये पोद्दार महाराज क्या जादूगर हैं जो अपनी कला प्रदर्शित कर रहे हैं ? ये कल्याण के प्रूफ देखने

बैठे हैं कि पू० गुरुदेव को उनकी आराध्या के दर्शन कराने में जुटे हैं ? कहाँ तो मात्र दो रुपये देने के लिये ही पू० गुरुदेव का इन्होंने मानभंग कर दिया और अतिकृपण बनकर सर्वथा निषेध कर दिया और कहाँ अपना अलौकिक प्रीति वैभव पू० गुरुदेव पर न्यौछावर करने को विकल और आतुर हैं ? धन्य है संत चरित्र और धन्य है उनके व्यवहार की वक्र गति, उच्छलन, और ज्वार भाटे का नर्तन !

पू० गुरुदेव देखते जा रहे हैं, साथ ही आश्चर्य भी करते हैं। चिन्मय वस्तु का प्रकाश इतनी रजोगुणी अवस्था में - कैसे संभव हो रहा है, जब वे भिक्षा कर रहे हैं, भिक्षा का खारा-मीठा स्वाद ले रहे हैं, अपनी दृष्टि से भिक्षा कराने वाले को भी देख रहे हैं और सारी हवेली की गतिविधि का भी अनुभव कर रहे हैं ? यह तो आंठवा आश्चर्य है। जादूगर भी जादू तभी दिखा सकता है जब दृष्टि-बंध कर ले। यह तो पूर्णतया श्रीपोद्दार महाराज के देह में श्रीराधारानी का पूर्ण अवतरण है। क्या श्रीपोद्दार महाराज के रूप में स्वयं श्रीराधारानी ही अवतरित हैं ?

जैसे व्रजभूमि में अवतरण के समय श्रीराधारानी सबके सम्मुख प्रकट थीं, वैसे ही इस समय पोद्दार महाराज के रूप में क्या उनका प्रकाश हो रहा है। परन्तु आज के पाँच हजार वर्ष पूर्व तो पर्जन्यजी और महीभानु की पीढ़ी से चिन्मय जगत अवतरित हो गया था, तो क्या पोद्दार महाराज के परिवार के रूप में, इन सभी परिकरों के रूप में, इस हवेली और रतनगढ़ धाम के रूप में भी चिन्मय जगत ही व्यक्त हो रहा है ?

पिंजर काला प्रतीक यह है व्रजधरा अरण्य तथा प्रियतम !
सब मातृ-पितृ-कुल के परिकर वे श्वसुरालय के भी प्रियतम !
गोवंश, वसन, उपकरण सभी जन के तन-धारण के प्रियतम !
संधिनी-शक्ति की परिणति ही जो हैं-इन सबका ही प्रियतम !

पू० गुरुदेव की इस अनुभूति का कोई तार्किक समाधान उन्हें प्राप्त नहीं हो रहा था, परन्तु यह तो उनके लिये प्रत्यक्ष सत्य था कि पोद्दार महाराज के स्थान पर षोड़श-श्रृंगार धारण किये भगवती श्रीराधारानी ही उनके सम्मुख व्यक्त हो रही थीं।

वे स्पष्ट चर्मचक्षुओं से देख रहे हैं :--

"मृगमद को मलय केसर से सींचकर जो द्रव्य बना है उससे रानी की ललाट पर आड़ की रचना किसी सौभाग्यवती सखी ने की है। चतुर्दिक कस्तूरी और केसर की खौर और मध्य में कुंकुम की बिन्दु ऐसी शोभा दे रही है मानो व्रहस्पति नक्षत्र सुमेरू पर्वत के ऊपर से उदय हो रहा हो। छोटे-छोटे तरौना आभूषण कानों में शोभा पा रहे हैं। ये तरौना हैं तो कनक के परन्तु इनमें विलक्षण पानीदार रत्नजटित हैं। ये तरौना के रत्न राधारानी के आनन पर, कपोलों की कनकवर्णी भूमि पर ऐसी ज्योति की किरणें फैंकते हैं मानो रवि की किरणें कनक-भूमि-वृन्दावन में विश्राम करने लेटी हों। हरिणी के नेत्रों के समान बड़े-बड़े चपल श्रीरानी के नेत्र जल से भरे बादलों की कृष्ण और श्वेत शोभा प्रकाशित कर रहे हैं।"

"रानी की नक बेसर की शोभा अहा कैसी सुभग है ? उसकी मुक्ता कैसी शोभा पा रही है ? इसके सम्मुख शुक्र नक्षत्र लजा जाता है। अहा ! प्रिया के अधरों की दसनावली की कैसी अलौकिक शोभा है। उनके सारे दसन ताम्बूल चर्वण से सहज रक्तिम हो रहे हैं। रानी जब मुसकाती हैं तो ऐसा लगता हैं मानो दसों-दिशाओं में दामिनी दमक उठी है।"

श्रीदुलीचन्द जी दुजारी बार-बार पूछते है - "आप बीमार हैं क्या ? कुछ भी नहीं खा पा रहे हैं। यह भात और दही ऐसे ही अछूता पड़ा रह गया है।" परन्तु गुरुदेव अन्न का कौर निगल ही नहीं पा रहे हैं।

पू. गुरुदेव क्या भोजन करें, उन्हें जो तृप्तिदायक भोजन श्रीपोद्दार महाराज अपना प्रूफ देखते-देखते परोस रहे हैं, उसे खायें या दुलीचन्द द्वारा परोसा भोजन खायें।

श्रीपोद्दार महाराज अपने रोम-रोम से पू० गुरुदेव को प्रीति वर्षा से नहला रहे हैं। उनकी यदा-कदा टेढ़ी चितवन करके निक्षिप्त दृष्टि पू० गुरुदेव के मन में ऐसी रस वर्षा कर रही है जिसका आस्वादन बिचारा दुलीचन्द क्या समझे ?

पू० गुरुदेव कहते थे कि मेरा तो श्रीपोद्दार महाराज की कृपा ने ही सब काम बना दिया। कृपा सागर पोद्दार महाराज की कृपा से मुझे अनायास ही महाभावसागर की गहरायी पर ड़ाल दिया गया। उन्होंने मुझे अपने लक्ष्य पर बिना श्रम के इतनी जल्दी पहुँचा दिया मानो हैलीकाप्टर या हवाई जहाज से यात्रा करायी गयी हो। मुझे सन्त कृपा से ऊँची से ऊँची वस्तु अनायास सुलभ हो गयी। मैने कोई परिश्रम और प्रयास किया ही नहीं।

भगवती श्री राधारानी का दर्शन
मिलन एवं नित्य संग

पू० गुरुदेव की भाव देह पंचतत्वमयी सर्वथा नहीं थी। वह भगवती ब्रह्माणी एवं लक्ष्मी, पार्वती की तरह कारण जगत की देव देह भी नहीं थी, न ही वह भगवती श्रीमती त्रिपुर-सुन्दरी की तरह भगवद्देह ही थीं। उनकी भावदेह का इन सब देहों से कोई साम्य ही नहीं था। पू० गुरुदेव की महाभावमयी देह तो चिन्मय राज्य की एक अलौकिक विलक्षण वस्तु है जो निर्मित होती है श्रीकृष्ण प्रेम-रस-सार से ही। **रसो वै सः** श्रीकृष्ण की प्रीति प्रतिमा होने से ही उसे 'रसमयी' नाम दिया जा रहा है।

निज प्रियतम के प्रेम की घनीभूत प्रतिमा रसमयी अपने प्रियतम को नित्य नव-नव सुख देने की लालसा सँजोये अपनी कुटी में विराजित है।

और इस रसमयी के निवास स्थल को तो देखो ! महाभाव रससिन्धु की लहरें तो पृथ्वी और उपल के रूप में परिणत हैं, वे ही तरुओं और लतिकाओं के रूप में चतुर्दिक् प्रसरित हैं, वे ही वन, गिरि, गिरिश्रृंग के रूप में परिणत हैं। आँखें गड़ाकर देखो, वही विशुद्ध रस जल, स्थल, तेज, पवन एव नभ के रूप मे सर्वत्र भासित हो रहा है। विशुद्ध रस सिन्धु के अतिरिक्त किसी को भी यहाँ कुछ भी अन्य वस्तु उपलब्ध होगी ही नहीं।

ऐसे इस अपार महाभाव रस सुधा सिन्धु में ही व्रज जगत का भान हो रहा है पू० गुरुदेव को। अहा, अथाह है यह महाभाव सिन्धु। इसमें तल तो है ही नहीं। नित्य अतल है यह। कितनी उच्च, उच्चतर, उच्चतम लहरें उठ रही हैं इसमें।

ये लहरें हैं -- इस रसमयी प्राणाराम नीलमणि का ही उच्छलित प्रेमोन्माद, प्रीति तरंगे; उसकी परम रसभरी लीलायें, एक से एक उत्तुंग तरंगे बनकर ऊर्ध्वतर, ऊर्ध्वतम उठ रही हैं और व्रज जगत को आ-आकर आर्द्र कर दे रही हैं।

क्या यह वज्र जगत और महाभाव समुद्र कुछ भिन्न हैं ? ये नन्दनन्दन, श्रीराधारानी, ये नन्द, यशोदा, वृषभानुजी, मैया कीर्तिदा, सखियाँ, पशुधन, ये चतुष्पद, ये भृंग, कीट क्या सब भिन्न हैं ?

अरे भाई ! कभी तुमने कन्दके बने राजा, रानी, महल, मकान, पर्वत, पशु-पक्षी देखे हैं ? सब कन्द ही कन्द तो हैं, इसी प्रकार ये सब मात्र

महाभाव रस समुद्र ही रस समुद्र है। भगवत्कृपा अथवा महज्जन कृपा से जब यह लोक किसी भाग्यवान को दिखता है तो वह कुछ भी कह नहीं सकता, अत: वह गूँगा हो जाता है, जगत को फिर देख नहीं पाता अत: अन्धा हो जाता है, और उसकी मन बुद्धि में इतना रस भर जाता है कि वह पागल हो जाता है।

सच्चिदानन्द परतत्व अहो ! अविषय मन-वाणी का प्रियतम !
है खेल अनिर्वचनीय और निरुपम अचिन्त्य इनका प्रियतम !
साँवर जिसको जितना सा, जब दिखला दे, वह देखे, प्रियतम !
उतना सा तभी, मर्म फिर भी अज्ञात रहेगा ही प्रियतम !!

इन लीलाओं की, इस व्रजराज्य की अनुभूति और प्रत्यक्षीकरण साधक एवं सिद्ध को अपने-अपने मानसिक धरातल के अनुरूप ही होती है। वियोग-संयोग, प्रकट-प्रच्छन्न, एकाकी-सामुदायिक सभी प्रकार की लीलाओं का उद्‌गम स्थल दिव्य भावराज्य का दिव्य नित्य विलास है। ये सभी लीलाये विलक्षण रूप से एक दूसरे से गुँथी हैं। इस रहस्य को हृदयंगम करना बहुत कठिन है।

संकेत भले सुन लो, यद्यपि रस का सागर वह है प्रियतम !
यह गिरा न जाने क्यों कुण्ठित हो रही अचानक है प्रियतम !!
कानन में विविध विहंगम हैं रस लोलुप किन्तु सभी प्रियतम !!!
है रस मर्मज्ञ नहीं पूरे अतएव न समझेंगे प्रियतम !!!!

यह वही सिन्धु अब तक जो है नापा जा सका नहीं प्रियतम !
है गहरायी कितनी, कोई बतला न सका, न सकी प्रियतम !!
नीचे जितना जो गया, गयी, बढ़ती ही मिली उसे, प्रियतम !!!
वह मरा, मरी, जो बचा, बची गूँगा, गूँगी वह है, प्रियतम !!!!

उस गूँगी का इंगित कोई समझे, न समझ पाये प्रियतम !
जो समझे वह सब समझ गया है नियम नहीं यह भी प्रियतम !!
गूँगी तो यह निर्णय करने आयगी नहीं कभी प्रियतम !!!
बहरी तो थी ही, अंधी, फिर पगली हो जाती है प्रियतम !!!!

तो जब महाभाव सिन्धु है तो फिर कौन सी संध्या कौन सा प्रभात। वस्तुतः आस्वाद्य, आस्वादक, और आस्वादन के भेद से रहित यह रस प्रवाह ही जब मात्र नीलसुन्दर है फिर कौन रसमयी और किसका किससे मिलन-वियोग ?

आस्वादन आस्वादक एवं आस्वाद्य नाम वाला प्रियतम !
सच तो यह है दयिते ! किञ्चित कोई है भेद नहीं प्रियतम !!
फिर भी वह है रसराज वहाँ वह महाभाव भी है प्रियतम !!!
इन दो की ही क्रीड़ा चलती उत्तर निकुंज में हे प्रियतम !!!!

आगे प्रवाह बहता क्रमशः उन दोनों के रस का प्रियतम !
वे अहो कहाँ से कहाँ जुड़े उसमें बहते रहते प्रियतम !!
पीछे आने का प्रश्न नहीं उस धारा में बनता प्रियतम !!!
वे सृजन और संहार जनित परिणाम न उसमें हैं प्रियतम !!!!

सचमुच ही प्रीति का पथ निराला, सबसे पृथक् है। इस प्रीति की उद्गमस्थली श्रीभानुराज नन्दिनी हैं। प्रीति पथ का पथिक वही हो सकता है जिस पर स्वयं भगवान व्रजेन्दनन्दन की कृपा का एक कण ढ़लक पड़ता है। कृपा कणिका से अभिषिक्त होते ही वह जुड़ जाता है, जुड़ जाती है, प्रीति की उद्गमस्थली भानुराजनन्दिनी से। उस समय भानुराजनन्दिनी के प्राणों की धारा ही प्रसरित होने लगती हैं जुड़ने वाले, जुड़ने वाली में।

पू० गुरुदेव की भाव देह की वर्तमान में ऐसी स्थिति है कि अभी उन्हें भानुराजनन्दिनी के मात्र राधा जन्माष्टमी उत्सव में दर्शन हुए हैं। अब उन्हें उनका नित्य परिचारकत्व प्राप्त हो जाय, वे उनकी अन्तरंग सखी होकर उनसे, उनकी लीलाओं से एकात्म हो जाये, इस भूमिका का निर्माण उनके प्राण प्रियतम श्रीकृष्ण कर रहे हैं।

प्रीति जगत की परिपाटी ही यही है पहले श्रीकृष्ण के रसराज रूप में, वृन्दावनविहारी रूप में, वंशी, कदम्ब सहित साधक को दर्शन होते हैं। इस दर्शन के पश्चात प्रेम भूमि का निर्माण होता है। तत्सुखिया भाव का बीज वपन होकर महत्कृपा से वह बीज पल्लवित होता है। उसकी रस दीक्षा होती है।

तब भाव देह का उदय होता है। पांचभौतिक देहाध्यास की सर्वथा आत्यन्तिक निवृत्ति होकर भावदेह में पूर्ण प्रतिष्ठा होती है। फिर लीला विधातृ शक्ति धाम में प्रवेश का अधिकार देती है। यमुना, दिव्य वृन्दावन, निकुंजों का, दिव्य चिन्मय गिरिराज परिसर आदि का दर्शन होकर इनमें नित्य निवास एवं निकुञ्ज प्रवेश की योग्यता प्राप्त होती हैं तब श्री राधारानी के दर्शन की भूमिका का निर्माण होता है। और तब उनकी मंजरी देह से सेवा प्राप्त होती है। राधारानी के दर्शन के पूर्व ही श्रीकृष्ण से मिलन और असीम प्रेम की अभिवृद्धि होती है। फिर श्रीकृष्ण मंजरी भाव देह में निज प्रिया का दर्शन करते हैं। उसे प्रिया ही मानकर अतिशय प्रेम से नहा देते हैं। तत्पश्चात् पूर्ण पात्री बनाकर राधारानी की चरण सेवा में उसे भेज देते हैं।

तो इस महाभाव रस सिन्धु में निशा अपने सम्पूर्ण राज्य का भार अपनी सखी उषा को सौंप कर सीकरों के रूप में अश्रुकण बिखेरती बिदा हो रही है। जिस प्रकार मनुष्य दो पैरों से ही चलता है, पक्षी की उड़ान निर्भर होती है दो पंखों पर ही, ठीक उसी प्रकार मिलन एवं विछोह, संयोग एवं वियोग दोनों के द्वारा ही इस रस विलास की सिद्धि होती है। इसीलिये निशा आती है और दिवस का अवसान होता है उषा आती है, निशा विदा लेती है, ब्रह्म मुहूर्त्त का आरंभ होता है । यमुना के किनारे से पूर्व में सूर्योदय होता है और पश्चिम में गिरि पर्वत श्रेणी में उसका अस्त हो जाता है।

निशा का अन्त होने पर शुक सारिका, मयूर, कोकिल, आदि असंख्य पक्षियों का कलरव प्रारंभ हो जाता है। इन पक्षियों के सुमधुर कलरव से रसमयी की नींद टूट जाती है। आँख खुलते ही खुमारी में उसे भान होता है प्रियतम अतिशय रसभरे नेत्रों से उसे ताक रहे हैं। ऐसी प्रियतम रस-भावित-मति रसमयी की निद्रा भी पर्यवसित होती है नीलद्युति में ही और स्वप्न जागरण में सब समय भरे रहते हैं, ये नीलसुन्दर अपनी मनमोहन मुसकान बिखेरते, अपनी चितवन की छटा से विश्व को मोहित करते हुए।

देखो रसमयी चल पड़ी है यमुना स्नान करने। यह कलिन्द नन्दिनी है कि सचिन्मय महाभाव-रस-सागर रसमयी के प्रियतम नीलम ही उमड़ रहे हैं उसे अपने प्यार के अतल तल में विलीन कर लेने को। अरे देखो ! देखो ! वह प्राणाराम नीलम रसमयी के सम्मुख न जाने कहाँ से आकर खड़ा हो गया है।

निर्निमेष नयनों से वह रसमयी की ओर सुस्नेह भरी अतिशय तृष्णा से देख रहा है।

रसमयी की भी कैसी दशा है। ऐसे अपूर्व मिलन सुख के क्षणों में और प्रीति के इन अनमोल अवसरों पर यह निगोड़ा निष्ठुर लज्जा भाव उसे अपने समग्र बल से विकट रूप में घेर लेता है। यह लज्जा उसमें अतिशय क्रूर विधाता ने मानो कूट-कूटकर भर दी है। लज्जा से घिरी वह रह-रहकर थरथर काँपने लगती है। यह कम्प इतना तीव्र होता है कि उसकी करधनी और गले के हारादि आभूषण ध्वनि करने लगते हैं। इसके पश्चात् स्वेद का प्रवाह उसके अंग-अंग से फूट पड़ता है। एक-एक रोम कूप जैसे जल का निर्झर हो उठा हो। वह मस्तक से ऐडी तक स्वेद से नहा जाती है। अब रोमांच और पुलक उठने लगते हैं।

रसमयी को ठीक अनुभव हो रहा है उसके प्रियतम के हृदय का सम्पूर्ण राग जैसे रसमयी के हृदय में भरता जा रहा है।

रसमयी अपनी प्रीति भावों की आंधी में इतनी प्रगाढ़ बह चली कि अपने वस्त्रों का भान भी उसे नहीं रहा।

इधर प्राणाराम नीलमणि के बाहु युगल भी भावों के अति वेग भरे उच्छलन से यंत्र चालित से ऊपर उठ जाते हैं। राग से ओत-प्रोत रसमयी का हृत्तल व्याकुल हुआ नीलम प्रियतम की ओर मानो दौड़ पड़ता है। अपने अस्तित्व को सर्वथा उसमें विलीन कर देने के लिये। और फिर दोनों का वह अनिर्वाच्य अचिन्त्य मिलन संघटित होता है, जिसको कोई क्या कहकर वर्णन करे। ऐसा कोई महासिद्ध सन्त हो जिसका हृदय पटल प्रिया-प्रियतम का लीला क्षेत्र बना हुआ हो, वही इस मिलन की छाया की छाया की कुछ कल्पना भर कर सकंता है। वाणी और लेखनी इतना ही बता सकती है कि रसराज श्रीकृष्ण का भाव-सागर महाभावस्वरूपा श्रीवृषभानुनन्दिनी को आत्मसात् कर लेना चाहता है और महाभावस्वरूपा श्रीवृषभानुनन्दिनी का भावसागर उमड़कर रसराज को आत्मसात् कर लेना चाहता है।

कोई कहेगा यहाँ वृषभानुनन्दिनी है ही नहीं, यहाँ तो रसमयी अपने प्रियतम नीलम से मिल रही है। भाई ! अनेक स्वतंत्र सत्ताएँ तो हैं नहीं, सत्ता का मूल स्रोत तो प्रिया प्रियतम राधा माधव का निभृत निकुञ्जान्तर्गत नित्य चिन्मय विलास ही है। लीला पात्र, जैसे अनन्त हैं, वैसे ही उन-उनके भावों के अनुसार लीलाएँ भी अनन्त हैं और उसमें पात्रों के भावानुसार मिलन एवं

वियोग भी अनन्त है। परन्तु सब में लहरा रहा है एक ही प्रिया प्रियतम का प्रेम। भले ही कहने को नाम रूप भिन्न हों, मिलन और वियोग के पात्र चाहे रसमयी और नीलमणि हों, मिलन एवं वियोग के स्पंदित होने का मूल स्रोत तो निभृत निकुंजान्तर्गत नित्य निकुञ्जेश्वरी प्रिया एवं नित्य निकुञ्जेश्वर प्रियतम माधव ही हैं।

और देखो ! रसमयी के नेत्र कमल झरने लगे हैं अपने नील देवता के वक्षस्थल को भिगोने। और इधर नीलसुन्दर की भी यही दशा है वह अपने आपको सर्वथा विस्मृत करके ढ़लक पड़ा है अपनी प्राण-प्रिया के उरस्थल पर ही।

और देखो अघटित घटित हो गया। महाभाव-रस-तरंगिणी कालिन्दी के तट पर ही अतिशय सुभग यह निकुञ्ज कहाँ से प्रादुर्भूत हो गया ? देखो ! सभी श्रृंगारोपयोगी, विश्राम-दायिनी सामग्री इसमें प्रचुर मात्रा में यथा स्थान सजी हैं। अति मनोरम पद्मपर्यंक स्थान-स्थान पर लटकती मणि मुक्ताओं की झालरें, स्थान-स्थान पर लगीं मनोहर रत्न-जटित मनोहर आसन चौकियाँ, शुक सारिकादि पक्षीगणों के लिये लटके रत्नखचित स्वर्ण पिंजर प्रसाधन की सभी वस्तुएँ, मनोरथ करते ही यह कुंज मनोवांछित सब वस्तुएँ यथावसर उपस्थित कर देता है।

और नीलमणि अपनी प्राणप्रिया को अपने हृदय से सटाये-सटाये इस निकुंज के पद्मपर्यंक में विराजित कर दे रहा है। और तब स्वयं अपनी प्राणनिधि के चरण प्रान्त में आसीन हो जाता है। इसने अपनी प्राणप्रिया के रक्तोत्पल सदृश द्युतिमान सुकोमल चरणों को अपने कर सरोजों में धारण कर लिये हैं।

और सुनो, यह अपनी प्रिया के सुकोमल चरणों को कभी अपने सुकोमलतम अधरों से संस्पर्शित करता, कभी अपने नील नलिनाभ नेत्रों से छुलाता, निज पलकों से इनकी रज स्वच्छ करता, और कभी अपने वक्षस्थल में उन्हें स्थापित करता, नयन मूँदे कुछ अस्फुट परम मधुर स्वर में बोल भी रहा है।

आओ ! इसकी परम मधुर वाणी सुनें। अहा ! इसकी सुमधुर वाणी आनन्दोदधि की उच्छलित तरंगे ही हैं।

"मेरे प्राणों की रानी, मेरी सर्वांगों की मोहिनी, मेरे सम्पूर्ण आह्लाद और आनन्द की उद्गमस्थली, तुम्हारे इन चरणों के आश्रय से मुझे कभी पृथक् मत करना।"

देखो, देखो ये अपनी प्राणप्रिया के चरणों को अपने नलिन नयनों के प्रेमाश्रुओं से भिगोता हुआ, नयन मूँदे किसी विलक्षण आनन्द समाधि में डूब गया है।

और रसमयी भी अपने प्राणनाथ नीलसुन्दर को, अनन्त, अपरिसीम, अनुपम सुख में डूबा देखकर उनके सुख से अनन्त सुखी हुई आनन्दोदधि की उर्मियों में डूब जाती है। उसे कुंज का कण-कण अपने प्रियतम की नीलिमा से परिवेष्टित दृष्टिगोचर हो रहा है। सहसा उसे किंचित् बाह्य जाग्रति होती है। वह देखती है उसके चरण तो प्रियतम के अश्रुओं से आर्द्र हैं।

हाय ! ऐसा क्यों ? हकबकायी सी रसमयी अपने नीलमणि के करयुगलों को अपनी अञ्जलि में में बाँध लेती है और अति मनुहार भरे स्वर में बोलती है -- "तुम रो क्यों रहे हो ? प्राणनाथ !! अहा रसमयी की कोकिल कण्ठी वाणी में कितना रस छलक रहा है।

रसमयी सोच ही नहीं पा रही थी कि कौन से अभिनव भाव के आवेश में मेरे जीवन सर्वस्व का मन निमग्न है और लोर की धारा के रूप में वह मेरे चरणों को अभिषिक्त करने बाहर फूट पड़ा है। लो ! रसमयी को अपने नीलम प्रियतम की अतिशय मधुर वाणी श्रवण-गोचर हुई।

"प्राणेश्वरी ! तुम मेरे अन्तर्हृदय की सुगुप्त बात जानना चाहती हो तो जान लो। मैं निरवधि नित्य ऋणिया रहूँगा तुम्हारा। मेरे शत सहस्र प्राणों की देवी ! वस्तुतः तुम्हारे शुचितम चरण सरोरुहों में ही मेरा स्थान है। तुम मुझे वहीं वास दिये रहना। मेरे इस सौभाग्य से मुझे कभी वंचित मत करना।

"मेरी प्राण संजीवनी ! तुम्हारे नयनों की ऐसी शोभा है कि वे मेरी आकृति को देखने के सिवा कुछ देखते नहीं। तुम्हारी कितनी सौभाग्यवती श्रवणेन्द्रियाँ हैं जो मेरे शब्दों और मेरी वेणुमाधुरी के सिवा कुछ सुनती ही नहीं। तुम्हारी वाणी मेरे नाम एवं गुणगान के सिवा कुछ बोलती ही नहीं। तुम्हारे हाथों के सौभाग्य की क्या कह कर स्तुति करूँ, वे मेरी सेवा के अतिरिक्त कुछ करते ही नहीं। तुम्हारे चरण मेरे अनुसंधान के सिवा कहीं गमन करते ही नहीं। तुम्हारा मन मेरे चिन्तन में ही निरन्तर रत रहता है। तुम्हारा चित्त एवं अहंकार सर्वतोभावेन मुझे ही समर्पित है। और हाय ! मैं

कैसा हृदयहीन हूँ कि मेरे नयन नित्य अनेकानेकों को निहारने में चंचल बने रहते हैं। तुमने अपने प्रेम के प्रवाह में मेरे स्वसुख लालसा रत प्राणों की ओर देखा तक नहीं। सचमुच ही मेरी प्रीति अपवित्र है। मेरी इस हृदयहीनता का परिचय पाकर भी तुम नित्य निरन्तर मुझे अपने अनुरागपूर उरस्थल में ही रखती हो, और मुझे पवित्रतम बनाती रहती हो। मेरी जीवनेश्वरि ! मैं इसी अभाववश रोता रहा कि हाय ! कब मैं तेरे अनुरूप तुझे प्रेम कर पाऊँगा ?

नील सुन्दर के हृदेश में भावों की आंधी सी आ रही है। वे अपनी प्राणेश्वरी रसमयी को मनोरम पद्म शय्या में विराजित कर दैन्य की चरम अवस्था में स्थित हुए, उसके रोम-रोम को अपने समग्र प्यार से अभिषिञ्चन करते हुए उसका अभूतपूर्व श्रृंगार करने लगते हैं। श्रृंगार करते हुए उनके हृत्तल में निर्मल अनुराग की उर्मियाँ निरन्तर हिलोरें ले रही हैं।

और तब वे दोनों गलबाहीं दिये, अपनी प्रीति से सम्पूर्ण वृन्दावन को आप्यापित करते हुए यमुना के किनारे-किनारे वन की ओर चलने लगे। फिर वह बेला आयी जब वह संकीर्ण वीथी दो भागों में विभक्त होकर राह बदल रही थी। एक भाग तो गहन वन में चला जाता था एवं दूसरा भाग गिरि-परिसर में जाता था।

वहाँ वे दोनों अवस्थित हो जाते और तब आकुलता से भरे-भरे हृदय से दोनों विलग हो जाते। रसमयी का शेष दिन अपने कुञ्ज में एकाकी व्यतीत होता। प्यार ही प्यार से भरा उसका संसार था। वह घंटों अपने प्रिय की स्मृति में खोयी मयूरी की ग्रीवा से लिपटी पड़ी रहती। और जो उसकी कुटिया में तमाल वृक्ष था, वह तो रसमयी का चिर सखा था। रसमयी अपने हृदय की सभी बातें उसे सुनाती रहती और वह अतिशय मनोयोग पूर्वक सुनता रहता। ये हरिणियाँ समग्रवन में कुलाचें भरती उसके प्रियतम का अन्वेषण करके आतीं और रसमयी को सुनाती थीं कि उसके प्रियतम इस समय कहाँ, कैसी, रसमयी लीला कर रहे हैं। सखा मण्डली के साथ उनकी क्रीड़ा केलि को हरिणियाँ रसमयी के कानों में मुख लगाकर सुनाती रहती थीं। इस प्रकार लगातार दो वर्ष तक पू० गुरुदेव की यह भाव साधना चलती रही। प्रतिदिन प्रभात काल में यमुना के किनारे प्रियतम नीलमणि उनकी कुंज में आते और विदा हो जाते। दो वर्ष पश्चात एक दिन इसी प्रकार विदा होते समय वे दोनों अवस्थित हो गये। प्राणों में भावी विप्रलंभ का ताप लिये आमने-सामने वे बहुत देर तक अनबोले खड़े रहे। रसमयी के अंगों-अंगों में अदर्शन ज्वाला की आशंका से

वैवर्ण्य का अतिशय संचार हो उठा था। रसमयी एक टक निहार रही थी अपने प्राणवल्लभ की ओर। प्रियतम नीलमणि के नेत्र भरे थे, वे कभी वन की ओर देखते फिर रसमयी की ओर। सहसा नीलमणि बोल उठे - "प्राणवल्लभे ! यह कुछ घटिकाओं की विरह वेदना तुम सहन कर लेना, भला। और तब न जाने भीतर की उठी किसी अन्तमूर्त जिज्ञासा से रसमयी प्रश्न कर उठी थी । "प्राणवल्लभ ! तुम कहाँ जाओगे मुझे छोड़कर ? तुम प्रतिदिन यहाँ से सीधे गोचारण को तो नहीं ही जाते। फिर इतनी शीघ्रता आखिर क्यों करते हो ?

उस समय रसमयी के प्राणों की क्या दशा हुई थी, इसे कोई कैसे लिखे भला ? आकुलता की मुखमुद्रा जो रसमयी की उस समय थी, उसे स्वयं उसके प्रियतम ही अपने हृदय में अंकित भले ही कर पाये होंगे। रसमयी की बाह्य स्मृति सर्वथा लुप्त हो रही थी। उसके मुख से बस दो चार अस्फुट शब्द ही निकल रहे थे -- 'प्राणनाथ ! जाओ ! परन्तु प्रतिदिन मुझे छोड़कर तुम कहाँ जाते हो, इसका संकेत तो कर दो ?

रसमयी सर्वथा स्तंभित हो गयी थी। उसके जीवन सर्वस्व नीलमयंक ने उसे अंक भर कर अपने हृदय से सटा लिया था। उनका बदनांभोज स्वर विन्यास की मुद्रा में खुल उठा था :-- "देख, प्रिये ! यह वन की पगड़ंडी मुड़कर चली जाती है गहन वन में। यमुना से दूर पूर्व दिशा में जहाँ ये गिरि श्रृंखलायें दिख रही हैं। उस गिरि के परिसर में दो बड़े सरोवर हैं। तेरी पर्णकुटी से किंचित् दूरी पर ही यमुना का अतिशय मनोहर सम्मोहन घाट है। और उसके पार्श्व में तेरी पर्णकुटी के उत्तर की ओर अग्रभाग में एक लघुस्रोत है। जब रस तरंगिणी यमुना बढ़ती है तो उसकी लहरें और उसका जल इस स्रोत में बहने लगता है और सरोवरों तक चला जाता है। रस तरंगिणी कालिन्दी और उन सरोवरों का इस प्रकार मिलन हो जाता है। पावस में गिरिराज के प्रच्छन्न निर्झरों से जब सरोवर भरपूर हो उठते हैं तो एक छोटे से द्वार से जल इस स्रोत में बह चलता है और सरोवर का कलिन्द तनया से पुनः मिलन हो जाता है। ग्रीष्म में न सरोवर सूखते हैं और न ही स्रोत सूख पाता है। और कैसी विचित्र बात है, कभी-कभी हेमन्त में, शीत में भी, शरद वसन्त में भी, शिशिर में भी अचानक सरोवर ऊपर तक भर जाते हैं और उसकी धारा बह चलती है, उस रस स्रोत से कालिन्दी से मिलने के लिये।

इस सरोवर के मध्य में एक विलक्षण निकुंज है, उसमें रहती है मेरी प्राण प्रिया राधा जिसकी स्मृति मुझे सदा विभोर बनाये रखती है।

रसमयी के चित्त में अतिशय आह्लाद की तरंगें उठने लगीं - वह सोचने लगी - "मैं तो एक छिल्लर के समान महामलिन अत्यंत दुर्गन्धित जल से भरी गढ़ैया के जल की भी एक कणिका मात्र थी। भला मैं मेरे इस दिनकर की तृषा कैसे बुझा सकती थी। अहा खद्योत के भुक्-भुक् प्रकाश से भी कभी घोर तिमिरमयी निशा में उजियारी हो सकती है। मल से सना काँच का एक मलिन कण क्या नीलमणि की स्पर्धा कर सकता है? मेरे जीवन का अणु-अणु अभिलाषाओं के हाहाकार में परिपूरित है। मैं भला कैसे मेरे प्राणवल्लभ को सुख दे पाती।"

"मुझमें लेश मात्र भी सौन्दर्य नाम की वस्तु नहीं है। कोई भी मेरे किसी भी अंग संस्थान पर दृष्टि डाल ले, उसे यही अनुभूति होगी कि महा कुरूपा हूँ मैं। यह भी मैं अच्छी तरह से जानती हूँ कि किसी भी सद्गुण का कियदंश भी मुझ में नहीं है। दोषों की जीवन्त प्रतिमा मैं हूँ। अविवेक का घन आवरण मुझे नित्य आवृत किये रहता है। "

"फिर यह भी नितान्त सत्य तथ्य है कि प्रियतम के प्रति निर्मल अनुराग भी मेरा नहीं है। वे कुछ भी यदि मुझ में स्नेह देखते हैं तो वह मात्र प्रीति का दंभ है। मैं तो नित्य निरन्तर स्वसुख वासना से ही हाहाकार करती रहती हूँ। निरन्तर मुझे अपने ही योगक्षेम की चिन्ता है। उनसे जो कुछ मुझे स्नेह मिला है, वह मुझसे छिन नहीं जाय -- यह मुझे नहीं मिला, मुझे यह नहीं मिला - इस चिन्ता में ही मैं अहर्निश डूबी रहती हूँ और उनके निरन्तर देते रहने पर भी संतुष्ट होना तो जैसे मैं जानती ही नहीं। हाय, कितना निकृष्टतम घृणित जीवन है मेरा।"

"मैं भला कैसे मेरे प्राणवल्लभ को सुख दे पाती। वेदना की इस आग में मेरा अन्तर जल-जल कर जर्जर हो रहा था। स्वप्न में भी उनको क्षणार्ध के लिये भी सुख देने की योग्यता मुझ में नहीं थी। वे उदारता के सिन्धु अपने अपरिसीम सौहार्द से मुझे प्रेम करते थे, यह मात्र उनकी महानुभावता थी, मैं तो किसी भी प्रकार उनके योग्य कदापि नहीं थी।"

"अब प्रियतम मुझे अनुमति भर दे दें तो मैं मेरे प्रियतम की प्राणेश्वरी राधा के चरण सरोरुहों में न्यौछावर हो जाऊँ ? हाय रे ! अब तक मैने मेरे प्रियतम से उनके हृदय की यह रसमयी वार्ता क्यों नहीं पूछी। धिक्कार है मुझे। इतना सुदीर्घ काल व्यतीत हो गया और मैं मेरी प्रिया राधा की चरण रज से भी वंचित रही। शत-सहस्र धिक्कार है मुझे।"

"देखो तो सही ! मैं महा अधमा, लज्जाहीना अपने प्राणवल्लभ की प्रतिदिन सेवा करने का ढ़ौंग वर्षो से कर रही थी। रसविद मधुकर रे ! मेरे द्वारा लगातार वर्षों से यह महान अपराध सृजन होता रहा और तुमने आज तक मुझे नहीं चेताया। मेरी इस भग्न कुटिया में प्रतिदिन तुम आते, मेरी यत्किञ्चित सेवा लेते, मुझ अतिशय कृतघ्ना को अपनी प्रीति से नित्य सराबोर करके चले जाते, मैं प्रेम-हत्यारिणी स्वसुख में डूबी हर्षित होती रहती। मेरे मन में कभी प्राणेश्वरी राधा से मिलने की उत्कण्ठा ही नहीं हुई तो तुम मुझे राह भी भला क्यों दिखाते ? मेरे नीलम ! तुमने जो कुछ किया सो सब अति स्वाभाविक ही था।"

"मैं सदा प्रेम का दंभ ही करती आयी हूँ और आज भी दंभ से ही भरा मेरा जीवन है। मेरे नीलमणि ! स्वप्न में भी सच क्षण भर के लिये भी मैं तुम्हें अनाविल प्यार का एक कण भी नहीं दे पायी।"

रसमयी बिलख-बिलख कर रोने लगी थी। उसके इस रुदन में अथाह परिताप और आह्लाद दोनों असीम मात्रा में युगपत् भरे थे।

रसमयी के मुख से नीलम, नीलम का स्वर निःसृत हो रहा था। फिर दोनों के प्राण एकाकार हो उठने को व्याकुल हो उठे। और पल बीतते न बीतते रसमयी और उसके प्राणवल्लभ नीलमणि का परिरंभण इतना दृढ़ हो गया मानो छूटना जानता ही न हो। और जब यह परिरंभण किंचित् शिथिल हुआ तो हकबकी सी रसमयी देख रही थी अपने प्रियतम नीलसुन्दर की ओर। उस समय रसमयी के मुख से अस्फुट स्वर निकल रहे थे--'नीलम ! नीलम !! प्रियतम हे ! तुम मुझे एक वरदान दे दो। मुझे तुम्हारी हृदयेश्वरी श्रीराधारानी के चरणों का जो अनागत और अतीत की सम्पूर्ण विश्वविमोहक प्रीति के उत्स हैं, अखण्ड एवं अनाविल कैंकर्य दे दो।

और तब प्रियतम के कर सरोज रसमयी के दोनों स्कंधों पर विराजित हो गये और वे कहने लगे - "प्रिये ! मेरी प्राणेश्वरी राधा का मेरे तन के रोम-रोम पर, मेरे मन के प्रत्येक संकल्प पर, मेरे जीवन की प्रत्येक गति पर, चेष्टा पर, इतना ही नहीं मेरे नेत्रों की पलकों के उठने और गिरने पर, मेरी अलकावलि के एक रोम के भी हिलन-चलन पर कितना अधिकार है यह तुम नहीं जानती। और उन्होंने रसमयी की अँगुलियों को अपने वक्षस्थल के मध्य में स्थापित कर दिया। और रसमयी के कर्ण रन्ध्रों की तो बात ही क्या, उसकी अँगुलियाँ भी स्पष्ट सुन रही थीं, उसके प्रियतम के वक्षस्थल की प्रत्येक

धड़कन में - राधा, राधा, राधा - यही स्वर स्पंदित हो रहा था और तब रसमयी ने अपनी दृष्टि अपने प्रियतम की रोमावली पर केन्द्रित कर दी और अपने नीलसुन्दर के प्रत्येक रोम-रोम में उसे श्रीराधारानी का ही रूप अभिव्यक्त मिला। और तब रसमयी देखने लगी, उस भूमि की ओर जहाँ उसके नीलम प्रियतम खड़े थे, उस वृक्ष के नीचे जहाँ वे अवस्थित थे, उस वृक्ष के क्षुद्र से क्षुद्र अंश में, उस भूमि के प्रत्येक कण-कण में, उसे नीले गगन के अणु-अणु में, उस सुरभित वायु के परमाणु-परमाणु में जहाँ उसके नीलमणि श्वास ले रहे थे, भरीं थी श्रीराधा ही राधा। रसमयी को सर्वत्र श्रीराधारानी का मुख ही झलमल करता दृष्टिगोचर हो रहा था। रसमयी स्पष्ट अनुभव कर रही थी कि उसके प्रियतम की प्रत्येक वृत्ति में श्री राधारानी के अतिरिक्त किसी अन्य का किञ्चिन्मात्र अस्तित्व नहीं है। वे सर्वतोभावेन श्रीराधा ही राधा हैं। वे दोनों एक ही हैं। एक होकर भी दो हैं और दो होकर भी एक ही हैं।

सर्वथा सर्वांश में इनमें नहीं कुछ भेद है।
नित्य लीला के लिये बस रंग भर ही भिन्न है॥

फिर भी रसमयी ठीक समझ रही थी कि उसके प्रियतम में कोई ऐसी विलक्षण माया है, कोई ऐसी संकल्प शक्ति है, जिससे सभी व्रजवासी भ्रमित हैं और ठीक समझ रहे हैं राधा वृषभानुजी की लडैती छोरी है और ये नन्द किशोर माता यशोदा के लाड़िले लाल हैं। और उसी शक्ति के प्रभाव से ही रसमयी भी उन्हें अपना प्राणनाथ, प्राणवल्लभ और राधारानी से पृथक् पुरुषाकार लिंग समझे बैठे थी। यद्यपि श्रीराधारानी और उसके प्रियतम एक ही हैं परन्तु इन्हें नित्य एक ही देखते रहना सर्वथा असंभव सा दुर्लभतम जटिल कार्य है।

रसमयी यह भी अनुभव कर रही थी कि निर्बाध दो वर्ष के लगातार क्रन्दन के पश्चात् जब उसके नेत्रों का मल स्वच्छ हुआ है तभी-तभी यह सत्य उसके सम्मुख प्रकट हुआ है।

और अब रसमयी की दृष्टि अपने प्रियतम के मुख पर स्थिर थी और प्राणधन नीलम की दृष्टि उसके मुख पर। काल मान से कितना समय लगा, उन दोनों के प्रकृतिस्थ होने में, अग्रिम लीला का उपक्रम करने में इसे कौन बतलावे ?

सच्चिदानन्द असमोर्ध्व और जो भगवत्ता का भी प्रियतम !
है सार मूल मधुरिमा, यही नीली-पीली द्युति है प्रियतम!!
रसमय संविद्, केवल अद्वय जो नील-पीतमय है प्रियतम !
लीला रस पीता हुआ नित्य जो युग्म रूप में है प्रियतम ॥
रह कर दो नित्य एक जो है, दृग विषय हुआ वह है प्रियतम !
जिनका किंजल्क सुदुर्लभ है योगीश-मुनीशों को, प्रियतम !!

रसमयी सोचने लगी - 'मैं निश्चय ही इसी क्षण मेरी जन्म-जन्म की स्वामिनी के दर्शन करूँ, परन्तु क्या मैं ऐसे ही चली जाऊँ ? कुछ तो प्रथम मिलन के समय मेरे पास भेंट करने को उन्हें हो। मेरे पास तो अश्रुकणावली के अतिरिक्त और कोई भी संपत्ति थी नहीं, है नहीं और भविष्य में कुछ होने की कोई संभावना भी प्रतीत नहीं होती। रसमयी अपने भावों में ऐसी तन्मय हो गयी थी कि उसे ठीक अनुभव होने लगा कि श्रीराधारानी के चरणों में वह मानो पहुँच ही गयी है। एक अभिनव आकुलता का उन्मेष रसमयी में हुआ। और तभी नीलसुन्दर प्रियतम ने रसमयी को अपनी बाहुओं में बाँध लिया। 'प्रिये ! तू श्रीराधारानी मेरी प्राणप्रिया के पास जावे तो यह मेरी वनमाला उसे पहना देना।' उन्होंने अपनी पहनी हुई वनमाला रसमयी के हाथों में सौंप दी। रसमयी ने वनमाला तो ले ली, परन्तु उसे अनुभव हुआ कि मेरे प्रियतम के अरुण अधर पिपासा से म्लान हैं। "अरे न जाने कितने काल से मैंने इन्हें ताम्बूल ही अर्पण नहीं किया। वह इस अपनी विस्मृति पर अपने को धिक्कारने लगी। ताम्बूल पात्र से उसने एक अतिशय सुगन्धित ताम्बूल गिलौरी निकाली। अहा ! गुलाब और केवड़ा जल में भीगी उस गिलौरी में केसर, इलायची, कस्तूरी, आदि अति सुगन्धित पदार्थ एवं सुगन्धित सुपारी और अनेक सुवासित स्वादिष्ट अन्य पदार्थ भी भरे थे। उसने वह ताम्बूल प्रियतम श्याम सुन्दर के मुख में दिया, परन्तु यह क्या ? प्रियतम ने उसे अर्ध-चर्वण ही किया और शेष आधा उसके मुख में देने लगे। "नहीं, नहीं प्राणवल्लभ ! यह ताम्बूल तुम मुझे ऐसे ही दे दो। मेरे नीलम ! आज यह ताम्बूल मैं माला के साथ मेरी स्वामिनी रानी को भेंट करूँगी। और प्रीति की अथाह अनुभूति में तन्मय रसपयी ने अपना दक्षिण कर प्रियतम की ओर बढ़ा दिया। और नीलमणि ने वह अर्ध-चर्वित ताम्बूल रसमयी की हथेली में रख दिया।

रसमयी सोच रही है कि कितने निर्मल स्वभव के हैं उसके नीलमयंक प्राणधन ! उन्हें सदा देते रहने में ही अत्यधिक सुख का अनुभव होता है। क्या उनकी राधारानी का भी ऐसा ही स्वभाव होगा ?

सहसा रसमयी को स्मरण आया कि उसने अपने प्रियतम को इतने दीर्घकाल तक अपनी ही समस्याओं में उलझाये रखा। यह उसने कितना बड़ा अन्याय किया है ? अब तो इनको प्राणप्रिया के पास जाने ही देना चाहिये। और मैं कुछ काल ठहर कर तब उनके पास जाऊँ जिससे इनके परस्पर मिलन में किञ्चित भी मेरे कारण व्यवधान नहीं पड़े।

रसमयी अपने प्राणधन से कह उठी - 'नीलम रे ! तुम कब मुझ से बिदा लेकर राधारानी के पास जा रहे थे ? परन्तु मेरे कारण तुम्हारा वहाँ जाना विलम्बित हो गया। देखो, यहाँ पथ तो है नहीं, घोर अटवी ही अटवी है। गहन कान्तार और सूर्यदेव भी मध्याकाश की ओर बढ़ चुके हैं। उनका ताप भी तीव्रतम हो रहा है। हाय ! यह सब मेरे ही कारण हुआ ? मुझ पर तुम्हारा इतना स्नेह क्यों है ? इस स्नेह के पराधीन हुए ही तो तुम अपनी प्राण प्रिया से मुझे मिलाने को उत्सुक थे।'

'प्राण ! तुम्हारे स्नेह के लिये मैं क्या करूँ ? तुम्हारा स्वभाव ही ऐसा प्रीति परायण निर्मल है। इतना कष्ट सहकर घने कान्तार को पारकर तुम प्रतिदिन प्रभात एवं सांयकाल मेरे पास आते हो ? फिर मेरे पार्श्व से गिरि परिसर जाते हो ? तुम्हारे ये सुकोमल चरण इतनी लम्बी पथ की दूरी कैसे पार कर पाते हैं ?'

'कंटकाकीर्ण पथ निश्चय ही तुम्हें अतीव कष्टदायक होता होगा, परन्तु घनी-प्रीति तुम्हें इस कष्ट में भी सुख बोध कराती है ?' रसमयी अपनी प्रियतम के दक्षिण कर में पुनः लिपट जाती है एवं कहती है -- "तुम कितने प्रेमी हो, प्रियतम।

सुमधुर वार्तालाप से दोनों का परस्पर रस-विनिमय हो रहा है। दोनों अग्रसर हो रहे हैं गिरिराज परिसर की ओर। सम्मुख दिखाई पड़ने वाली पहाड़ी को ही वे लक्ष्य करके उस दिशा में जाने वाली किसी न किसी पगड़ंडी का वे आश्रय ले रहे हैं। रसमयी देख रही है कि उसके प्रियतम जिस किसी भी पथ पर चलने को ज्यों ही उद्यत होते हैं, वृन्दावन की अधिष्टातृ देवी उसी पथ में सर्वत्र अतिशय सुरभित पुष्प-लताओं को आदेश देकर सारे पथ में लता-मंडप निर्माण करती चलती हैं। वृन्दा देवी द्वारा चयन किये अनगिनत

पुष्प चतुर्दिक विकसित हो पथ को सौरभ से भर देते हैं। रसमयी देखती है रह-रहकर प्रियतम के अरुण अधरों पर स्मित व्यक्त हो जाती है और वह स्मिति ही परिणत हो जाती है सुमनावली के रूप में। वे सुमनावली समस्त पथ में आस्तरण बिछाती जाती हैं। रसमयी ने चलते-चलते देखा कि कालिन्दी का सम्मोहन घाट सम्मुख ही है। रसमयी ने प्रियतम श्यामसुन्दर से कुछ काल यहाँ विश्राम करके तब आगे बढ़ने की रुचि प्रकट की।

प्रियतम रसमयी की अभिसंधि समझ गये। वे मुसकाते एकाकी ही वन में प्रविष्ट हो गये।

कालिन्दी के किनारे यह कुञ्ज कैसा अतिशय सुभग है। चतुर्दिक लता मण्डप से आच्छादित किन्तु यमुना की ओर पश्चिम दिशा में यह खुला हुआ है।

कला की अधिष्ठातृ देवी सरस्वती ने स्वयं अनगिनत एक से एक सुन्दर परम सुरभित पुष्पों को उनके ही वृन्तों से गुम्फित कर कैसी सुभग प्राकृत मालाओं का निर्माण किया है और उन्हें इस निकुंज में स्थान-स्थान पर पूर्ण शोभा से लटका दी है। इन मालाओं में मधुकर किस प्रकार झूम-झूम कर लिपट रहे हैं। इन चंचरीकों की बोली दूर से तो स्वाभाविक गुन-गुन लगती है, परन्तु यदि ध्यान देकर कोई सुने तो उसे स्पष्ट अनुभव होगा ये, 'प्रिया-प्रियतम' 'प्रिया-प्रियतम' नाम ही उच्चारण कर रहे हैं। रसमयी देख रही है वृन्दावनेश्वरी श्रीराधारानी का प्रियतम-सुख सर्जक मन ही सुमनों के रूप में सर्वत्र विकसित हो रहा है और प्रियतम प्राणवल्लभ उसके नीलसुन्दर की रोमावली ही मधु मत्त चंचरीक बनी अपनी प्रिया के सुख-सिन्धु मन पर उमग-उमग कर गुँजार कर रही है।

रसमयी कुंज शोभा निहारने लगी। कालिन्दी की 'कल' 'कल' प्रवहन ध्वनि उसे 'कृष्ण' 'कृष्ण' उच्चारण करती सुनाई पड़ रही थी। परन्तु जब वह थोड़ा ध्यान लगाकर सुनती तो पहले वह ध्वनि 'राधाकृष्ण' 'राधाकृष्ण' सुन पड़ती एवं तब वह 'राधा' 'राधा' में पर्यवसित हो जाती।

यमुना के किनारे-किनारे का सम्पूर्ण तट क्षेत्र ही अभिनव एक से एक सुन्दर कुंजों से भरा था। कोई कुंज सर्वथा रक्तवर्ण के पुष्पों से लदा था तो कोई पीत पुष्पों से, कोई शुभ्र श्वेत पुष्पों से, कोई मिश्रित रंगों से; रसमयी इन कुंजों की शोभा देखती मुग्ध हो उठती है।

वन शोभा देखते देखते ही यंत्रचालित सी रसमयी को किसने कैसे महाभाव-रस-सिन्धु-सरोवरों के तट पर पहुँचा दिया, उसे कालमान की प्रतीति ही नहीं हुई। वह तो वन शोभा देखने में संलग्न थी और कोई यंत्री यथा-दिशा यथा-राह उसके चरणों को संचालित किये जा रहा था।

सहसा उसे अनुभव हुआ, वह किसी ऐसे देश में पहुँच गयी है जहाँ अलौकिक रूप एवं सौन्दर्य उमड़ रहा है। वहाँ प्रकृति अपने समग्र कौशल से श्रृंगारित हुई खड़ी है। अभिसार की अभिलाषा उसे चंचल बना चुकी है। नील सुन्दर प्रियतम ने उसे छूकर जगायी है। और केवल जगायी ही नहीं अनन्त असीम रस से सराबोर कर दी है उसे, अपना विशुद्ध रसभरा संस्पर्श दान करके। परन्तु वह अब कहीं छुप गया है। उसका अनादि स्वभाव जो ऐसा ही है।

प्रथमतः वह अपने प्रति आसक्ति उत्पन्न करता है। और जब वह आसक्ति असीम हो उठती है तो छिपकर वह उस स्नेही का सिसकना तड़पना देखता रहता है। ऐसा नहीं कि वह स्वयं प्रीति वेदना से अछूता रहता है। परन्तु दूसरे को सीमा रहित क्रन्दन कराता हुआ वह स्वयं भी क्रन्दन करता है। यह कन्दन ही उसकी दृष्टि में नेह का साफल्य है।

तो प्रकृति सोलहों श्रृंगारों से सजी अपने आवास से बाहर निकल कर इस सरोवर के चतुर्दिक् स्थित इन अनेक परम रसमय कुञ्जों में घूमती यत्र-तत्र उसे ढूँढ़ती फिर रही थी। प्रकृति के पथ को विकसित पुष्पों से आच्छादित कर दिया था निराविल रज ने। विशुद्ध सत्व अपनी दिव्य ज्योति से उसका पथ आलेकित कर रहा था। ये दोनों भी प्रियतम नीलम के वाम और दक्षिण नेत्रों में ही तो सदा निवास करते हैं। अतः वहीं से निकलकर वे उसकी सेवार्थ प्रस्तुत हुए थे।

सर्वरसनिकेतन से विलक्षण अभिसार जो उसका संघटित होना है। ढूँढ़ते ढूँढ़ते प्रकृति भी थक कर चूर हो गयी थी। इसीलिये सरोवर के किनारे श्रान्त थकी चुपचाप निस्पंद पड़ी थी। जो भी उसे अपने से बाहर ढूँढ़ता है, उसे वह थका ही लेता है। बहिर्मुख जितने भी लोग हैं सबके लिये वह सुदुर्लभ जो है। उसकी सम्यक् समाराधना अन्तर्मुखी होने पर ही संभव है। इसीलिये प्रकृति को भी अन्तर्मुखी करने वह उसकी समग्र गतिविधियों को प्रतिपल निरीक्षण कर रहा है। परन्तु पूर्णतया संगुप्त रहकर। आत्म-संगोपन की कला में उसकी कुशलता निरुपम एवं अतुलनीय है।

कुछ भी अवगुंठित नहीं रह सकता उससे। भाव की एक छोटी से छोटी तरंग भी किसी की भी उससे छुपी नहीं रह सकती। किन्तु जब तक मापक यंत्र को ध्वंस कर देने लायक तड़प नहीं होती तब तक तो उसे अप्रकट ही रहना है। प्रकृति के बड़े-बड़े कोटि-कोटि नेत्र उसे सर्वत्र ढूँढ़ते जा रहे हैं, लालायित हुए सब दिशाओं में कण-कण को छान-छानकर निरख रहे हैं, कहीं वह छिपा पकड़ में आ जाय। परन्तु उसे पकड़ लेना, ढूँढ़ लेना, बड़े-बड़े योगीन्द्र, मुनीन्द्रों के लिये भी दुष्कर है, फिर बिचारी यह त्रिगुणात्मक प्रकृति उसे कैसे ढूँढ़ पावेगी। यह उसे कौन समझाने का साहस करे। बड़े-बड़े सांख्याचार्य भी उसे विश्लेषण करके, छान-छानकर नहीं जान पाये। चारों वेद जिसका निर्णय 'नेति नेति' कह कर नहीं ही कर पाये।

है वह धृष्ट अवश्य ही उसके पास यहीं कहीं। छिप-छिपकर उसकी समग्र चेष्टाओं को वह देख रहा है। कुछ भी अवगुंठित नहीं रह सकता उससे। भाव की एक छोटी सी तरंग भी उससे किसी की भी भला कभी छिपी रह सकती है ? सबका एक मात्र साक्षी जो है वह ?

कुछ भी अवगुंठित नहीं रह सकता उससे। वह इतना शीघ्र प्रकट भी कैसे हो ? अभी तो तड़प-मापक यंत्र को ध्वंस कर देने लायक भी नहीं हुई है।

ढूँढ़ते-ढूँढ़ते अतिशय श्रान्त हो गयी थी वह। बैठकर अँगड़ाई लेने लग गयी थी। उसी समय प्राणवल्लभ के कृष्ण देह से निकलकर तम ने उसे अपने अंक में अवश्य ही भर लिया था। तम के द्वारा लाड़ लड़ाई जाकर वह शान्त सो गयी थी।

परन्तु प्रियतम को कहाँ चैन है ? वे अपनी प्रेमिका को तमोगुण में डूबी कैसे देख सकते हैं ? वे प्रकृति का स्वप्न बन गये ? जो स्वयं ही निराविल तमोरूप और रजोरूप हैं उन्हें स्वप्न बनने मे बिलम्ब थोड़े ही होता है। वे स्वयं ही तो जाग्रत स्वप्न एवं सुषुप्ति हैं। प्रकृति क्या ही प्यारा स्वप्न देख रही है :—

प्रियतम उसके चरणों को सहला रहे हैं। उसकी पैरों की सुकोमलतम अँगुलियों को अपने कपोलों से छुला रहे हैं। उसकी पगथलियों में लगे रजकण अपनी नेत्रों की बरौनियों से स्वच्छ कर रहे हैं। बलिहारी है रसराज के असमोर्ध्व प्यार की। वे अपने बिम्ब-विडम्बी अधरों से उसके चरणों की अँगुलियों को संस्पर्श दान कर रहे हैं। चाहे स्वप्न में मिलो अथवा जाग्रत में।

प्रियतम मिल तो गये ही हैं। स्वप्न में ही प्रकृति के नयनों में मानजनित रोंष आ गया। प्रकृति जाग्रत तो हो गयी है स्वप्न में, परन्तु मानवती होकर उसने उन प्रियतम को पीठ दे दी है, जिनकी मुख छबि की एक झलक पाने को वह अब तक तरस रही थी।

प्रियतम ने उसका मानभंग करने का व्रत ठान लिया।

अहा ! कैसी मधुस्यंदी वाणी प्रियतम के मुख से फूट पड़ी है। "प्राणप्रिये ! मैं तो युगों-युगों से तुम्हारी प्रतीक्षा करता रहा हूँ।" मात्र एक ही रसभरे वाक्य के कान में जाते ही, मात्र एक ही निराविल प्रीति भरी नयन भंगिमा के दर्शन से प्रकृति का मान टूटकर चूर-चूर हुआ बिखर जाता है।

प्राणवल्लभ की वाणी सत्य की सत्य है। प्रकृति के कानों ने विद्रोह करके प्रियतम की वाणी का रस लेना स्वीकार कर लिया। प्रियतम के रूप को नेत्रों ने द्वार दे दिया। नेत्रों के द्वार से निरुपम सुन्दर रूप सीधा हृदय में जाकर विजड़ित हो गया। अब प्रकृति के लिये उस रूप को वहाँ से निवारण करना असंभव था। दृगों ने कपाट लगा लिये। दृग बन्द ही नहीं हुए, सुस्थिर होकर पहरेदारी करने लगे। और तो क्या घ्राणेन्द्रियों से निस्सरित होने वाले प्राण भी प्रियतम के चरणों में जाकर उनके दस नख-चन्द्रों के प्रकाश में एक हो गये।

इसी को सच्चा प्रणय कहते हैं। अनादि काल से यही रस-परम्परा है, मान का पर्यवसान प्रणय में ही होता है।

रसमयी सरोवर के चतुर्दिक प्राकृत शोभा के कण-कण में भरे प्रियतम नीलमणि को स्पष्ट अनुभव कर रही थी। अपने प्राणसारसर्वस्व नीलमणि से प्राणों की उत्कृष्टतम एकात्मता लिये हुए वहाँ की प्रकृति थी। और वहाँ के काल में व्याप्त थी मिलन समय की निरुपम निष्पंदता। साथ ही प्रियतम की अखण्ड स्मृति जन्य एकाग्रता।

रसमयी चकित हो गयी। कैसा देश काल व्याप्त है इस सरोवर के चतुर्दिक।

रसमयी के प्राण रानी का जय-जय कार कर उठे। "हे वृषभानु राजनन्दिनी ! हे प्रियतम प्राणेश्वरी !! तुमसे ही ....? नहीं, तुम्हारी छाया की छाया के कण मात्र से ही प्राप्त हुई हैं इस जड़ प्रकृति को ये सबकी सब भावनिधियाँ।

तुम्हारी भौंहों से इसने अद्‌भुत रसभरी बंकिमा ग्रहण की हैं तुम्हारे श्रुति युगल से स्मृतिकाल की अद्‌भुत एकाग्रता यह प्राप्त कर चुकी है, तुम्हारे नयन सरोरूहों से इसने विशुद्ध निर्मलता प्राप्त की है, और तुम्हारे नासा श्वास से अप्रतिम एकाग्रता का दान पाकर यह कृत-कृत्य हो उठी है। तुम्हारे हृदय में अपने प्रियतम के प्रति जो बढ़ता हुआ राग का प्रवाह है वही आविर्भूत कर दे रहा है चतुर्दिक् यहाँ के सर्व देश-काल में, सबके सब निरुपम अलौकिक प्रेम भाव और तज्जनित विलक्षण शोभा सौन्दर्य।

रसमयी के नेत्र नलिनों में भावसिन्धु लहराने लगा। कभी वह अनुभव करती सर्वत्र केवल-केवल प्रियतम नित्य निकुञ्जेश्वर ही खड़े हैं। यहाँ और कुछ भी नहीं है। उस समय जब रसमयी में यह भाव प्रधान होकर प्रगाढ़ता को प्राप्त करता तब उसे अपने अंगों का पीतवर्ण भी श्याम वर्ण दिखने लगता। वह गहन विचारों में डूब जाती। उसके प्राणनाथ आज अगणित कैसे हो गये हैं, क्या वे ही मेरे पास से यहाँ आकर अपनी प्रिया के प्रेमवश उसके निवास के चतुर्दिक वृक्ष, लता, पुष्प, तृण, गुल्म, पशु, और पक्षीगण बन गये हैं ? क्या सचमुच ही ये मेरे हृदय हरण मेरा भी इस प्रकार विलक्षण प्रेम भरा स्वागत कर रहे हैं ?

परन्तु दूसरे ही क्षण उसे अनुभव होता :-- नहीं, नहीं इन दोनों में, रानी एवं नीलम में तो कोई भेद ही नहीं है ?

सर्वथा सर्वांश में इनमें नहीं कुछ भेद है
बस रंग भर ही भिन्न है अवशेष सभी अभेद है।

पीतद्युति ही पीतद्युति सर्वत्र वन एवं सरोवर में भरी परिलक्षित हो रही है। यह कंचन ज्योति ही एकमेव सत्य की सत्य है। अहा ! कैसा विलक्षण सौन्दर्य है मेरी रानी का।

देखो ! रानी ही तो वृक्ष-वृक्ष से, लतिका-लतिका से, भूमि की प्रत्येक तृणराजि से, सुमन-सुमन के अन्तराल से, उसे निराविल प्यार से नहला रही है। अहा, कैसी सुमधुर वाणी में सर्वरुप में रानी रसमयी का स्वागत कर रही है :--"आओ बहिन ! आओ !! इस निकुंज में तुम्हारा स्वागत है।"

हो रहे चित्र हृत्पट पर थे, अंकित सब लहरों के प्रियतम !
कैसे; कितने सुन्दर वे हैं किस भाँति कहूँ तुमसे प्रियतम !
अविराम भावना हृत्तल की, विगलित हो, थी आती प्रियतम !
उसका मन डूब गया नीली-आनन्द हिलोरों में प्रियतम !!

इस प्रकार रसमयी विलक्षण भाव दर्शन में डूबी हुई थी। उसे अनुभव होने लगा उसके सम्मुख एक विलक्षण निकुञ्ज है। वह विचारने लगी - यही ललिता रानी का सर्वसौभाग्यप्रद निकुञ्ज है। यही ललितानन्दद है। अवश्य ही उसे यहीं आज रानी मिलेंगीं। वैसे सरोवर के चतुर्दिक् अन्य अनेक एक से एक सुन्दर निकुंज थे। परन्तु आज उसे रानी ललिता कुञ्ज में ही मिलेंगीं प्रियतम ने उसे ऐसा संकेत ही दिया था।

रसमयी विस्फारित नेत्र उस कुंज के दर्शन करने लगी। कैसा विलक्षण यह निकुञ्ज भवन है। यह निकुंज सर्वत्र सब भागों से उज्ज्वल नीलमणिवत् प्रकाश पुंज की तरह ज्योतिर्मान है। इसकी चतुर्दिक् परिक्रमा में श्रीफल के असंख्य वृक्ष लगे हैं जो सभी पानीदार फलों से लदे हैं। अहा, चन्दन के नवतरुओं से ही यह कुंज बना है, अत: मलय गंध से यहाँ की शीतल वायु विलक्षण रूप में सुवासित है। उस कुञ्ज का प्रत्येक भाग इतना अलौकिक सौन्दर्य-माधुर्य से भरा था कि कब कौन से भाग पर दृष्टि चली जाय और वह अन्तर के भावों को सीमातीत रूप तक उद्दीपित कर दे। कुञ्ज के दर्शन करती-करती रसमयी भावोद्वेलनजनित शैथिल्य के अतिरेक से अभिभूत हुई विवश वहीं धम्म से गिर जाती है।

उसे सम्हाला उस निकुंज की द्वाररक्षिका ने। द्वाररक्षिका की दृष्टि बहुत काल से रसमयी पर केन्द्रित थी। रसमयी के अंगों में जो श्रृंगार रचना थी, वह प्राणधार नीलमणि का ही अप्रतिम हस्त कौशल है, चतुर द्वार रक्षिका के पारखी नेत्रों से यह तथ्य सर्वथा ही गोपनीय नहीं रहा था। प्रियतम श्याम सुन्दर निज जीवनेश्वर की यह नवागन्तुका अतिशय प्रीति भाजन है तभी तो इस कुञ्ज-प्रदेश, इस राधा-विहार-सरोवर तक उसकी पहुँच हुई है -- यह जान लेने में भी उसे कोई कठिनाई नहीं थी। अत: उसने रसमयी की भाव दशा देखकर तत्क्षण आगे बढ़कर उसे अपनी बाहुओं में भर कर सम्हाल लिया। पास ही एक पीठ पर जिसमें सुन्दर मखमल का आस्तरण था, द्वार रक्षिका ने उसे बैठाया।

रसमयी के मुख से वाणी तो फूट ही नहीं रही थी, उसने मूक भाव से अपने हाथों में सम्हाली वह माला और अर्ध वर्णित ताम्बूल खण्ड उस द्वार रक्षिका की ओर बढ़ा दिया। ताम्बूल खण्ड और माला के दर्शन मात्र से द्वार रक्षिका समझ गयी कि यह प्राणेश्वर द्वारा प्रिया को भेजा गया प्रेमोपहार ही है। द्वार रक्षिका ने ज्योंही वह प्रेमोपहार स्पर्श किया -- रसमयी का स्वसुख उपरत प्रियतम प्रेम सुखदान का सम्पूर्ण स्वभाव उसके हृदय में प्रतिबिंबित हो गया। रसमयी के सरल और निर्मल भाव से भरे आनन पर वह द्वार रक्षिका मुग्ध हो गयी।

"क्या यह चर्वित ताम्बूल खण्ड प्राणाधार नील सुन्दर ने हमारी प्राणसखी को प्रेषित किया है, और इस माला में तो निश्चय ही जीवन सर्वस्व नीलमणि के अंगों की पावनतम सुवास पूर्णतया परिव्याप्त है ? क्या यह भी प्राणसखी के लिये तेरा उपहार है ? अति भाव भरे प्रश्न द्वार रक्षिका उससे कर रही थी।" परन्तु सखी री ? इस माला में तो तेरे वक्ष की चर्चित कस्तूरी के कण भी संलग्न हैं ? यह कहते हुए उसे रसमयी पर अतिशय प्रेम भरे नेत्रों से ऐसे कटाक्ष बरसाये कि रसमयी उस पीठ पर ही भावाविष्ट हुई लुढ़क गयी।

रसमयी बहुत चेष्टा करके स्वीकृति में मात्र अपनी गर्दन ही हिला सकी।

परिचारिका के नेत्र भी स्नेहाधिक्य से अतिशय आर्द्र हुए भावावेश में मुँद से रहे थे। परन्तु परिचारिका में सेवा भाव इतना प्रबल एवं प्रमुख था कि उसने अपना भाव तो तत्क्षण ही संवरित कर लिया। उसे वह चर्वित ताम्बूल और वन माला तत्क्षण ही अपनी प्राणसखी रानी के पास ले जानी चाहिये, इस कर्तव्यजनित त्वरा ने रसमयी के हाथों से दोनों उपहार लेकर वह निकुञ्ज महल के भीतर प्रवेश कर गयी।

रसमयी द्वार रक्षिका के जाते ही विचार में पड़ गयी। ज्यों ही द्वार रक्षिका रानी को ये उपहार समर्पित करेगी, रानी तत्क्षण ही उसे अपने पास बुला लेंगीं। प्राणवल्लभ नीलसुन्दर तो निकुञ्ज के भीतर अपनी प्रिया के पास होंगे ही। हाय ! मेरे भीतर जाने से रानी एवं प्रियतम के विहार के एकान्त क्षणों में निश्चय ही बाधा आवेगी। यदि वे एकान्त में नहीं होते तो यह द्वार रक्षिका मुझे अपने साथ ही ले जाती। हाय ! मैं उनके असीम एकान्त सुख के क्षणों में अवरोधक बन गयी ? हाय ! मैने यह विचार ही नहीं किया कि रानी से मिलनजन्य सुख को प्राप्त करती हुई मैं प्रियतम के सुख की घातक हो रही हूँ। अब तो मुझे तुरन्त ही लौट जाना चाहिये।

इन विचारों के आते ही रसमयी के पैर परावर्तित हुए अपने निकुंज की ओर लौट चले। रसमयी दैन्य में इतनी अभिभूत थी कि तीव्रगति से अपने कुंज में ही पहुँचकर उसने विश्राम की साँस ली।

भगवती श्रीराधा का वह दिव्य विहार सरोवर और ललिता कुञ्ज के दर्शन कर रसमयी अत्यधिक आनन्दित थी।

वन का सौन्दर्य, निकुञ्ज की शोभा, सरोवर की अगाध सरसता, उस द्वार रक्षिका का स्नेहभरा उन्मुक्त रसालाप, उस स्थान की एक-एक वस्तु ने रसमयी का मन पूर्णतया वशीकृत कर लिया था।

अहा ! कैसा निर्मल देश है, जहाँ स्वसुख वाञ्छा की कलुषित छाया किसी तृण में भी नहीं है। काम की सामर्थ्य ही कहाँ जो वहाँ के एक कीट को, भृंगी को भी संस्पर्श कर सके।

अहा ! और वह द्वार रक्षिका सहचरी -- निश्चय ही मनोज दूर खड़ा अश्रु-मोचन करता उसके चरणों की धूलि के कण की याचना करता होगा ? अरे ! अरे !! उस निर्मल सरोवर के चतुर्दिक् कितनी शुक-सारिकाएँ थीं। असंख्य कपोत-कपोती थे। मयूर, चातक और वराट-वराटी थे। कितने रंग-बिरंगे शोभा भरे पक्षी वहाँ विलसित थे।

शुभ शकुन बताते खंजन को, पहले उसने देखा प्रियतम !
इतने में उड़ आया कपोत अभिनन्दन करने हे प्रियतम !
वह कण्ठ फुलाकर लगा नृत्य अपना दिखलाने हे प्रियतम !
पीहू करके आया मयूर उसने तानी छतरी प्रियतम !
सुन्दर अत्यन्त एक शुक था प्रणिपात किया उसने प्रियतम !
आया वह नीलकण्ठ, अपनी ग्रीवा नीची करके प्रियतम !
आयी वट तीतर की टोली रचना कर मण्डल की प्रियतम !
थे रंग-बिरंगे कितने ही क्रमशः विहंग आये प्रियतम !
नानापन अहा ! प्रकृति में जो है नित्य सृष्ट होता प्रियतम।
मानो वह सभी विहग बन कर करता था सुस्वागत प्रियतम !
जो प्यार लिये ये आये हैं, वह इनकी ही निधि है प्रियतम !

ये सभी विहंग कितने सुखी हैं। रसविलास की देव दुर्लभ सभी सामग्रियाँ उनको करतलगत सुलभ हैं, परन्तु उनमें इनकी दृष्टि ही नहीं जाती। कैसे

योग सिद्ध हैं ये सभी, कि एक निमेष मात्र भी विस्मृत नहीं कर पाते अपने जीवन सर्वस्व प्रियतम और प्राणसखी रानी के सुख संवर्धन के उद्देश्य को। तृण पर स्थित लघुत्तम कीट भी वहाँ 'पद्मपत्रमिवाम्भसा' पंक से अलिप्त कमल पत्र की तरह स्वसुख से सर्वथा अछूता है और प्रियतम सुख सूर्य की शोभा पर दृष्टि जमाये पूर्ण विकसित है।

अहा ! मैं तो उस द्वार रक्षिका के कुछ क्षणों के व्यवहार से ही उसकी कीतदासी हो गयी हूँ। फिर रानी की परम निगूढ़ प्रेमपात्री अन्य परिचारिकाएँ, मंजरियाँ, सखियाँ, नर्म सखियाँ तो न जाने कितने प्रीतिरस से भरी कैसी छलकती होंगी ?

अहा ! रानी का प्रियतम के प्रति कैसा अपार गरिमामय प्रेम है कि उसकी किंकरियाँ, दासियाँ, द्वार-रक्षिकायें, उसके गृह के पक्षी, शुक, सारिकाएँ, कपोत, वन के मयूर, चातक, उसके सरोवर के वराट, वराटी, इतना ही नहीं उस निकुंज की परिधि का आकाश, भूमि, तृण, गुल्म, वल्लरियाँ, तरुश्रेणियाँ, कीट, भृंग, वायु एवं जल एवं सूर्य-चन्द्र नक्षत्रावलि तक सब सृष्टि एक ही स्फुरणा से जीवंत है -- "प्रियतम का सुख ही हमारा सुख है, प्राण जीवन की रुचि चरितार्थ हो, उनकी चाह पूर्ण हो, यही हमारे अस्तित्व की सार्थकता है।

वैसे ही तुम 'निकुञ्ज है वह' ये शब्द भले सुन लो प्रियतम !
पर देश नाम से कथित नहीं कोई है वस्तु वहाँ, प्रियतम !
है कहाँ अहो ! फिर इसका है उत्तर इतना बनता प्रियतम !
वह अपनी ही महिमा में है परिनिष्ठित नित्य बना प्रियतम !!

रसमयी का मन विचार कर रहा था :-- 'अहा ! प्रियतम नीलम ने मुझे जितना प्यार दिया है, वह अवश्य ही तभी वे दे पाये हैं जब मेरे स्वरूप में उन्हें रानी ही दिखाई पड़ी होंगी। वे तो यथार्य में रानी के ही एकान्त प्राणवल्लभ हैं। वह रानी और प्रियतम के केलिसुख को अपने भावों में निरखती सम्पूर्ण निशा जागती रही - वह सोच रही थी --

कैसी थी प्रीति परस्पर की लहरें लेती रहती प्रियतम !
दोनों ही एक दूसरे को रहते निहारते ही प्रियतम !!
फिर भी अतृप्ति रहती मानो दर्शन का सुख न मिला प्रियतम !

दोनों के प्राण एक होकर ऐसी गति धर लेते प्रियतम !
होने लगती प्रतीति उनको, मानो मैं हूँ न अहो प्रियतम !
स्वीकार काल का वे करते, कहने के लिये तभी, प्रियतम !
वह था उनका स्वरूप ही, फिर आरंभ खेल होता, प्रियतम !
उनकी पलकें खुलती, सुस्मित अधरों पर भर आता प्रियतम !
सुस्थिर वे नयन पुतरियाँ भी चञ्चल कुछ हो जातीं प्रियतम !
गलबाहीं दिये हुए ही वे धीरे-धीरे उठते प्रियतम !
चलते धीरे, सुख से धरणी जड़िमा धारण करती प्रियतम !
आगे प्रवाह बढ़ता क्रमशः उन दोनों के रस का प्रियतम !
वे अहो ! कहीं से कहीं जुड़े उसमें बहते रहते प्रियतम !
पीछे आने का प्रश्न नहीं उस धारा में बनता प्रियतम !
वे सृजन और संहार जनित परिणाम न उसमें हैं प्रियतम !!

इन्हीं विचारों में खोयी-खोयी, डूबती-उतराती रसमयी की सम्पूर्ण निशा व्यतीत हो गयी। ब्राह्म मुहूर्त्त होते-होते ही उसकी आँख लगी होगी, परन्तु स्वप्न में भी उसको रानी का अपने प्रियतम से प्रेमालाप ही सुनाई पड़ रहा था।

आखिर बोली प्यारी -- 'प्यारे तुम अहो विजेता हो प्रियतम !
बोला प्यारा 'सच है प्यारी ! श्रीकर में ही जय है प्रियतम !
दोनों ही दुहराते जाते अपनी ही उक्ति भला, प्रियतम !
मुखरित निकुञ्ज वन का कण-कण होता उस मधुरव से प्रियतम !

रसमयी को ध्यान ही नहीं रहा, कब उसके प्रियतम उसके निकुञ्ज में आ गये।

प्रियतम के द्वारा पूर्व दिवस उसका श्रृंगार करते समय जिसमें घिसी हुई कस्तूरी लेप रखा जाता था, वह पात्र पार्श्व में ही छूटा पड़ा रह गया था, वह पात्र प्रियतम की दृष्टि में आ जाता है, वे उस कटोरी में अपने दाहिने हाथ की अनामिका अँगुली डालकर सोती हुई उसके कपोलों पर एक गोल बिन्दी लगा देते हैं। बिन्दी लगाकर प्रियतम उसके मुख की शोभा निरखने लगते हैं

मात्र एक कस्तूरी बिन्दु से ही उसकी शोभा इस प्रकार खिल उठती है कि प्रियतम उसके आनन सरोज पर मुग्ध हुए स्थिर दृष्टि हो जाते हैं।

इतने में ही उसका निद्रा भाव टूट जाता है वह प्रियतम का अपने निकुंज में आगमन देख शीघ्रता से उठती है। वह अपने बिखरे केशों को शीघ्रता पूर्वक समेटती है। सिर पर अंचल डाल लेती है। प्रियतम उसके बगल में ही बैठ जाते हैं। अभी तक भी वे उसकी मुख शोभा में ऐसे डूबे हैं कि उनका एक टक उसकी ओर देखना स्थगित ही नहीं होता। कुछ क्षण उसके मुख को अपलक देखते रहकर अतिशय प्यार से प्रियतम रसमयी के मस्तक पर अपना हाथ रख देते हैं। फिर अतिशय प्यार से रसमयी के मुख के पास झुककर धीरे से कहते हैं --"रात को बहुत देर तक जागती रही थी, ठीक ठीक बतलाना।"

रसमयी कुछ नहीं बोल पाती। नेत्र मूँदकर अपने प्राणाधार के वक्षस्थल में ढुलक जाती है।

प्रियतम रसमयी के बांये कंधे को अपने दाहिने हाथ से स्पर्श कर अपने प्यार को दुगुना करते पुन: पूछते हैं - "क्यों, नहीं बतायेगी ?"

रसमयी कुछ गंभीरता की मुद्रा में किन्तु मन्द मुसकाती हुई कहती है -- "विचारों में निद्रा आयी ही नहीं तो क्या करूँ ? रसमयी की बात सुनकर प्रियतम के नेत्र स्नेह से छलक आते हैं।" सूर्योदय हो गया है, यमुना स्नान करने नहीं जाओगी ?" वे पुन: प्रश्न करते हैं।

यह सुनते ही रसमयी शीघ्रता से वस्त्र समेटती हुई खड़ी हो जाती है। शीघ्र से चलकर मुख प्रक्षालन करने एक सुन्दर सजी हुई स्वर्णनिर्मित मणि जटित पीठिका पर बैठ जाती है। पास ही रखे जल-पात्र से जल लेकर वह मुख धोती है, दाँत माँजकर(कुल्ला) गण्डूष करती है। रसमयी के मुख से निस्सृत सुवास इतनी दिव्य एवं मनोहर है कि उसका सौरभ सर्वत्र प्रसरित हो उठता है। प्रियतम उस सुवास के आघ्राण में ही ऐसे मुग्ध हो जाते हैं कि उन्हें कुछ क्षणों तक बाह्य ज्ञान ही नहीं रहता। तत्पश्चात सकुचाये हुए प्रश्न करने की मुद्रा में पूछ बैठते हैं -- हाँ, हाँ ! मैं विस्मृत ही कर गया, कल तू रानी को वह पुष्पमाला और ताम्बूल खण्ड देने गयी थी न ? उसका तुझसे मिलन हुआ ही होगा ? मैं तो तुझसे उसका मिलन वृतान्त सुनने ही निरे प्रभात तेरे निकुञ्ज में चला आया था। मैं तो अपने मन में निराश था कि तू मूझे इस कुञ्ज में मिलेगी ही नहीं। अवश्य ही निशापर्यन्त तुझे प्रिया ने सख्य

स्वागत में ललिता कुञ्ज में ही रोक लिया होगा। तू अभी तक वहीं होगी ? वहाँ से स्नान श्रृंगार करके ही प्रिया तुझे भेजेंगी।

मैंने तो इधर तेरे कुञ्ज में ऐसे ही आनुमानिक झाँक भर लगायी थी। तुझे सूर्योदय तक सुषुप्त देख कर तेरे समाचार जानने की जिज्ञासा और प्रबल हो उठी थी।

प्रियतम की वार्ता सुनकर रसमयी अतिशय संकुचित हो उठी। उसका शरीर काँप उठा। वह किस मुख से प्रियतम को सूचित करे कि उसने मात्र माला और ताम्बूल ही द्वार-रक्षिका के हाथ भेज दिया था, संकोचवश स्वयं तो बिना मिले ही लौट आयी। प्रियतम कुंज के भीतर प्रिया के पास ही अवस्थित होंगे -- यह उसका अनुमान मिथ्या ही निकला। वे तो वहाँ थे ही नहीं।

हाय ! रानी अब क्या समझेंगी ? अवश्य ही मुझे मिथ्या अभिमानिनी मानेंगी ? मैं द्वाररक्षिका के भीतर सूचना पहुँचाने तक भी द्वार पर धैर्य रख प्रतीक्षा नहीं कर सकी ? मुझे अतिशय धिक्कार है ? अब तो जो भूल हो गयी सो हो ही गयी । अब प्राणवल्लभ से कपट क्या करूँ ? उन्हें तो सब खोलकर बता देना ही चाहिये।

रसमयी का हृदय अतिशय तीव्रता से धक्-धक् कर रहा था। उसका कण्ठ रुद्ध हो गया था। वह अपने प्रियतम के हृदयदेश से सट गयी। उसके नेत्रों से अश्रु प्रवाह बह उठा ।

"नीलम रे ! मैं महा मूर्खा, व्रजमूर्खा हूँ। सीमा रहित मूढ़ ही मुझे कहना उचित होगा । व्यवहार तो तनिक भी नही आता मुझे। मात्र अपने पागलपन के विचारों में ही दिनरात बहती रहती हूँ।"

"इस प्रकार की सब प्रकार से हीना को एक तुम ही ऐसे हो जो इतना स्नेह देते हो ? मैं रानी के सरोवर और निकुञ्ज गयी थी। वह तो साक्षात् प्रीति का प्रासाद ही है। प्रीति मूर्तिमती हुई वह वन बन गयी है। रानी का वात्सल्य वहाँ सर्वत्र जीवन्त प्रस्फुटित है। वल्लभ ! मेरे पास शब्द नहीं हैं जो वर्णन कर सकूँ, उस वन में मैंने कितनी असीम आत्मीयता, प्रीति, सौन्दर्य एवं शोभा का दर्शन किया।" "रानी की वह परिचारिका, एक मात्र किंकरी द्वार-रक्षिका - अहा ! कैसे उसके निराविल, सरल, प्यार से सने व्यवहार को, उसके रसीले माधुर्य को, उसके नयनों की पैनी परख को मैं शब्द दूँ। बस इतना ही कह पा रही हूँ - प्रीति ही अपनी समग्र गरिमा के साथ वहाँ उस प्रदेश में मूर्त है। नित्य नवीन-नवीन सुन्दर है वहाँ का उपवन। ऋतुराज

वसन्त अपने दल-बल के साथ वहाँ बारहों मास सेवारत है। शीतल सुरभित मलय पवन नित्य नवीन भाव गरिमा लिये एक रस वहाँ प्रवाहित होता है। वहाँ कोई प्राकृत लतिकाएँ नहीं हैं, सब कल्पलताएँ हैं, तरूश्रेणियाँ नन्दन कानन के पारिजात श्रेणी के गर्व को चूर-चूर कर दे रही है। महाभाव रूपा संघिनी ही उन वन के रूप में परिणत हैं।"

"प्राणाधार ! मैने सोचा तुम रानी के साथ अवश्यमेव वहीं होओगे। अतएव तुम्हारे संयोग-सुख में मेरा अनवसर पदार्पण कहीं बाधा न दे, इस संकोच में मैं वे उपहार उस द्वार रक्षिका को सँभलाकर रानी से अमिली ही परावर्तित हो गयी। निश्चय ही वह द्वाररक्षिका तुरन्त रानी की सम्मति लेकर लौटी होगी, मुझे द्वार से विलुप्त पाकर वह चिन्तित भी हुई होगी। रानी को भी मेरा इस प्रकार बिना सूचना दिये लौटना अव्यवहारिक ही प्रतीत हुआ होगा। परन्तु नाथ ! मेरे द्वारा ऐसा हृदय हीन व्यवहार मात्र इसीलिये हो गया क्योंकि मैं मूढ़ा यही समझ रही थी कि तुम निकुंज में रानी के संग हो।"

यह कहती-कहती रसमयी फफक कर रो उठी। प्रियतम उसकी निष्कपट निर्मल उक्ति पर रीझ गये। वे उसे अति स्नेह से अपने कंधे पर चिपकाये स्नानार्थ यमुना किनारे ले आये।

व्रजेन्द्रनन्दन श्रीकृष्ण चन्द्र की स्मिति कितनी सम्मोहक है, कितनी मादक माधुरी इसमें भरी है, इसका अनुभव वही प्राणी कर सकता है, जिसे वे अनुभव करावें। प्रियतम ने अपनी मादक स्मिति का प्रयोग किया रसमयी का दुःख भुलाने में। रसमयी के मन-प्राण सर्वथा विमोहित हो उठे। एक क्षण में ही अभिनव एवं अलौकिक नेह धारा जन्य सुख में वह डूब गयी। वह प्रियतम के कंधों पर सिर टिकाये-टिकाये उनसे सटी-सटी यमुना के किनारे स्नान करने चली आती है।

रसमयी की कुटी से यमुना तक पथ के दोनों ओर कदली वृक्ष उग रहे थे। सुगन्धित पुष्पों की क्यारियाँ भी समग्र पथ को सज्जित किये थीं। पुष्पों की पंखुड़ियों को वायु उड़ा-उड़ाकर पथ में आस्तरण कर दे रहा था। कदली वृक्षों के पीछे अनार के वृक्षों की कतारें थीं और तब विल्ब वृक्ष फलों से लदे थें। कहीं विल्बों के स्थान पर नारिकेल शोभा पा रहे थे।

प्रियतम रह-रहकर रसमयी की ओर झुक जाते हैं और अत्यंत प्यार से रसमयी के कंधों से स्पर्श कर उसके मुखराविन्द की ओर देखते हैं। निशा जागरण के फलस्वरूप रसमयी अतिशय अलसायी है, फिर प्रियतम का सुकोमल

प्यार भरा स्पर्शालिंगन प्राप्त कर सुख से मुँदी उसकी आँखें शयित होने लगती हैं।

वह बीच-बीच में आलस्यवश उबासी भी लेती है। उबासी लेते समय उसके मुख से ऐसी निर्मल सुवास प्रसरित होती है कि पद्मगंध वहन करती वायु भी उस गंध को पाकर निहाल हो जाती है। रसमयी के मुख से निस्सरित इस सुवास का ऐसा तीव्र वेग प्रवाहित होता है कि वन-उपवन के विकसित पुष्पों में से मधु संवरित करते भ्रमर पुष्पों का मकरंद त्याग कर दम्पति की ओर उड़ चलते हैं। इस असीम भ्रमर दल को अपने चतुर्दिक् फेरी देते देख रसमयी संकुचित हुई अपने प्रियतम के अंगों से सट जाती है।

अब वही निकुंज आ जाता है, जहाँ पद्म पर्यंक में रसमयी का श्रृंगार प्रियतम ने किया था। यमुना के किनारे अतिशीतल मन्द समीर बह रही है। निकुंज के मुख्य द्वार से कुछ ही दूर पर यमुना का निर्मल प्रवाह है। मुख्य द्वार के आगे कैसा विशाल वट वृक्ष है। इस वट के नीचे खड़े हुए दोनों यमुना महारानी की सुखद शोभा देखते हैं।

सहसा प्रियतम अति मधुस्यन्दी वाणी में बोल उठे --"देख ! आज फिर तू कोई नयी बुद्धि मत उपजा लेना। तेरे कल लौट आने से प्रिया को बहुत ही गहन चिन्ता हुई होगी। मेरा अर्ध चर्वित ताम्बूल और मेरी अंग संस्पर्शित वन माला को भेंट में देने वाली अनुरागिणी से मिलने वे कितनी उत्कंठातुर हो गयीं होंगी, मैं तो मात्र कल्पना से ही सिहर उठता हूँ। तेरा विचार करते करते वे भी तेरी ही तरह निशापर्यन्त जागी ही होंगीं। मुझसे भी बहुत ही भूल हो गयी। तुझसे पृथक् होकर मैं चला तो था प्रिया की ओर ही परन्तु मेरे चरण भटक गये। मैं पहुँच गया चन्द्रावली कुञ्ज की ओर।

वहाँ से ज्यों ही राह मुड़ने का विचार किया ही था कि मुझे शैव्या ने देख लिया। अब तो उसके आग्रहवश मुझे चन्द्रावली सखी के पास ठहरना ही पड़ा। मैं सोचने लगा -- अब तू निर्बाध प्रिया से मिल पावेगी। और प्रिया भी तुझे पाकर मेरे न आने की व्यथा भूल जायेंगीं। तेरे सख्य सत्कार में वे रात भी पलकों में काट देंगीं -- ऐसा विचार करता हुआ मैं निशा में भी वहाँ नहीं गया।

हाय ! हाय !! अब तो बहुत ही व्यथा हुई होगी उसे। मेरी किसी भी अनुरागिणी से मिलने की उन्हें इतनी आतुरता हेती है, मानों मैं स्वयं ही

उससे मिलने आया हूँ। न जाने कल दुपहरी और विगत सम्पूर्ण निशा उन्होंने कैसे काटी होगी, मैं तो सोच भी नही पा रहा।

अब तू शीघ्र स्नान कर ले। मुझे तो अपनी गौएँ सम्हालनी हैं। मैं उन्हें सखाओं को सम्हलाकर किसी प्रकार तेरे सन्निकट आ पाया था। सुबल एवं तोक तो मेरे साथ ही आ रहे थे। वे मुझे अकेला आने ही नहीं दे रहे थे। लम्बे समय तक उनसे दूर रहने पर वे मैया को सूचित कर देंगे।

आज अभी प्रिया के पास मेरा जाना संभव नहीं है। तू शीघ्र स्नान करले तो मैं तेरा श्रृंगार कर दूँ। यदि तू मुझसे बिना श्रृंगार कराये चली गयी तो प्रिया को मेरे न आने का कष्ट सताता रहेगा। मेरे द्वारा श्रृंगारित तुझे पाकर रानी को तेरे स्वरूप में मैं ही मैं दिखाई पड़ूँगा। अतः वे मेरे न आने की व्यथा को तुझे पाकर बिसार देंगीं।

रसमयी चट-पट स्नान-घाट की ओर चल पड़ती है।

अहा, यमुना की नीली जलधारा में स्नान करती रसमयी की कैसी विलक्षण शोभा है। प्रियतम घाट की दीवारों से छुपे इस शोभा को नयन भर निहार रहे हैं। यमुना की तरंगे रसमयी के सिर पर से होकर पृष्ठ देश और स्कंध देश में गिर रही हैं। उसकी काली घनी कुन्तल राशि जल के वेग से स्वर्ण वर्णी पीठ पर इस प्रकार लहराती है मानों कोई वृहद् कृष्ण नाग बहता हुआ स्वर्ण शिला को पाकर उस पर आरूढ़ होने को प्रयासरत हो। परन्तु जल का वेग उसके प्रयास में बाधा दे रहा हो।

रसमयी के अंगों में लगी, केसर एवं कस्तूरी का गहरा लेप यमुना जल को पंकिल कर दे रहा है। उसके अंगों के मर्दन से अंग गंध इतनी गहन रूप से वायुमंडल को सुवासित कर दे रही है कि चारों दिशाओं से भ्रमर दल व्याकुल हुआ स्नान करती रसमयी की परिक्रमा करने लगता है।

जैसे ही रसमयी स्नान करती है, एक सुन्दर स्वर्णथाली में सब वस्त्राभूषण अपने आप घाट पर प्रकट हो जाते हैं। रसमयी अपने अंगों को एक शुभ्र स्वच्छ वस्त्र में लपेट कर यमुना से बाहर आती है और अपने गीले वस्त्रों को यमुना में ही पृथक् कर देती है। उसके पहने हुए गीले वस्त्र इस प्रकार यमुना जल में विलीन हो जाते हैं, मानो कोई रजकिनी उन्हें स्वच्छ करने ले गयी हो।

भाव विभोर रसमयी यमुना से बाहर आती है। स्नान करते समय उसे यही अनुभव होता रहा है कि उसके प्रियतम का स्नेह ही धारा रूप में यमुना

बना प्रवाहित हो रहा है। तभी न यमुना वे जीवन्त प्रकट हुईं उसे वस्त्रालंकार देती हैं, और प्रतिदिन उसके तन मन को रस स्वच्छ करके प्रियतम श्यामसुन्दर की भोग्या बनने की योग्यता प्रदान करती हैं।

यमुना किनारे के निकुञ्ज में रसमयी एक स्वर्ण-आसन पर जिस पर अति सुकोमल मखमल का आस्तरण है, बैठ जाती है। उसके तपाये पुरट के से वर्ण-सदृश अंगों में चम्पई रंग का लहँगा धारण किया हुआ है। इस लहँगे में कृत्रिम पीत एवं नील पुष्प विजड़ित हैं। पुष्पों के मध्य में इतनी सुन्दर मणियाँ जड़ी हैं कि लहँगा उन भिन्न-भिन्न वर्ण की मणियों से झलमल कर रहा है। उन्होंने राग बहुला सच्चिन्मय अरुणिम बंधों वाली कंचुकी वक्षस्थल पर धारण की है। ये सभी वस्त्र तो रसमयी घाट से ही स्वयं पहनकर आयी थी। प्रियतम ने अपने हाथों से उसकी ग्रीवा में झुला दिये हैं विविध रत्नों के हार, मणिमुक्ताओं की मालायें। और तब उन नील कर कमलों द्वारा सम्पूर्ण आभूषण रसमयी के सर्वांगों में विधृत हुए। रसमयी तो अपने प्रियतम की प्रेम एवं कला दोनों के संयोग से भरी श्रृंगार सम्पादन लीला को द्रष्टावत् तटस्थ देख रही थी। रसमयी देख रही है कि मेरे प्यारे नीलमणि के संस्पर्श से आभरणों की शोभा अपरिमित बढ जा रही है। साथ ही प्रियतम अनुभव कर रहे हैं कि मेरी प्यारी के अंग इतने सुन्दर हैं कि आभूषण तो उसके सौन्दर्य से आभूषित हो उठते हैं। वे भला उसके अंगों को क्या सजायेंगे।

देखो ! नीलसुन्दर अपने करपल्लवों से सौरभशाली सुन्दर पुष्प चयन कर रहे हैं। इन पुष्पों का कैसा सौभाग्य है कि ये प्रियतम के कर कमलों द्वारा गुम्फित होकर वनमाला का अति सुन्दर आकार ग्रहण कर रहे हैं। इस सुमन हारावली को जब प्रियतम रसमयी को पहनाने लगे तो उसने इसे हाथों में लेकर प्रियतम को ही पहना दी और उनकी वह पहनी माला रानी के लिये उपहार रूप में माँग ली। प्रियतम की ग्रीवा में झूलती वह माला अहा कैसी सौभाग्य वर्षा कर रही है।

और अब प्रियतम ने रसमयी के अति रसीले नेत्रों को अंजन अंजित करने का विचार किया। वे अपनी मध्यमा अंगुली से अंजन लेकर नयनों से जैसे ही छुलाने लगे, वे यह देखकर चकित हो गये कि वे नेत्र तो स्वयं ही उन्हें अपने भीतर पूरा समोये हैं। प्रियतम ने अपनी कज्जल सनी अँगुंली नेत्रों से हटाकर रसमयी के कपोलों पर दिठौना के रूप में लगा दी। अपनी प्रिया के ललाट पर आकर्षक कुंकुम बिन्दु लगाकर प्रियतम सद्यःस्नात प्रिया की

केश राशि को अगरुधूम से सुखाने लगे। उस विकीर्ण केशराशि को जैसे ही उन्होंने वेणी रूप में बाँधने का विचार किया, वैसे ही रसमयी ने पुनः उन्हें निषेध कर दिया कि वह वेणी-बंधन तभी करेगी जब अपनी प्राण सखी रानी के दर्शन कर लेगी ? अहा, प्रियतम ने रसमयी की श्रवणेन्द्रियों में अति सुन्दर रत्नजटित तरौना पहनाये। अन्त में ज्योंही वे पनवट्टे में से पान का बीड़ा निकाल कर अपने हाथों प्रिया के अधरों से छुलाने लगे तो पुनः रसमयी ने उस ताम्बूल को प्रियतम के हाथों से अपने हाथों में ले लिया और अपने हाथों प्रियतम को उसे अर्धचर्वित कराके शेष अपने अंचल में रानी को भेंट करने की इच्छा से बाँध लिया। श्रृंगार समाप्त कर प्रियतम रसमयी को आरसी दिखाने लगे।

अहा ! अब तो आत्यन्तिक उल्लास में भरे प्रियतम कभी आरसी में अंकित रसमयी की छवि हृदय से सटाते हैं कभी अपने स्वयं को ही उस शोभा पर न्यौछावर करने लग रहे हैं।

अन्त में श्रृंगार सम्पूर्ण कर अति उल्लास से भरे अधरों में मन्द-मन्द मधुर मुसकान लिये दोनों ही गलबाँही देकर पुनः रानी के विहार कुंज की ओर चलने लगते हैं। आज प्रियतम ने रसमयी को संकेत कर दिया कि रानी ललिता कुंज में नहीं मिलकर विशाखा कुंज में जो उसके पार्श्व में ही स्थित है, वहाँ मिलेंगी।

अहा, दोनों परस्पर कैसे एक दूसरे से लिपटे वन में प्रवेश कर रहे हैं। कौन कह सकता है कि इनमें दो भिन्न स्वतंत्र सत्ताएँ क्रियाशील हो रही हैं। जो इस समय इनका इस प्रकार प्रेम से युगपत् जुड़ा गुंथा रूप और वन गमन देखेगा वह तो यही कहेगा, ये दो देह अवश्य हैं, परन्तु दोनों का संचालन मात्र एक अहंकार और एक ही सत्ता कर रही है। अब वह सत्ता नील द्युति है अथवा पीतद्युति यह सत्य अपनी भाव राशि से ही आकलन किया जा सकता है। किसी को वह सत्ता नील द्युति प्रतीत हो सकती है, किसी को पीतद्युति और किसी को नीलपीत दोनों द्युति भी दिख सकती हैं। परन्तु दोनों का गमन लक्ष्य एक ही पथ है।

अहा, कैसी सुमधुर दोनों की परस्पर रसवार्ता हो रही है मानों दो वराट-वराटी एक दूसरे में समाहित प्रणय काकली कर रहे हों।

लो, वही कालिन्दी का सम्मोहन घाट आ गया। वहाँ से नील सुन्दर अपनी प्रिया से भरे हृदय से विदा लेकर गोचारण क्षेत्र की ओर बढ़ जाते हैं

और रसमयी त्वरा से चल पड़ती है गिरि की तलहटी में उन सरोवरों की ओर।

आज उसे अपनी प्राणसखी रानी से मिलने की इतनी त्वरा है कि वह प्रियतम नीलमणि के विछोह दुख को ही भूल गयी है।

अहा ! पलक झपकते रसमयी के चरण उस देश को संस्पर्शित करने लगते हैं, जहाँ सुमनों का सौरभ चतुर्दिक् प्रसरित हो रहा है। मधु लुब्ध भ्रमर उड़ उड़कर विविध सुमनों पर बैठ रहे हैं।, परन्तु नीरस निर्गन्ध वन्य जाति के प्राकृत रूप से खिले सुमनों से भला कृष्ण भ्रमर की तृष्णा कैसे बुझ पावे अत: विरक्ति में भ्रमित से दौड़ रहे हैं, कुञ्जों की फेरी लगा रहे हैं, कहीं किसी छिद्र से इन्हें प्रवेश मिल जाय तो ये टूट पडें उस पद्मिनी पर जो इन चंचरीकों की मात्र विश्राम स्थली है।

विविध विहंगम श्रेणी तरुजाल में निलीन रहकर नित्य निकुंजेश्वरी और निकुंजेश्वर का दर्शन पाने अति समुत्सुक है। इनमें से अनेक पक्षी तो तृण संकुल धरा पर सुस्पष्ट व्यक्त होकर अपनी सेवा समर्पित करने की त्वरा में नांच-नाचकर हर्षित हो रहे हैं और शुक, शुकी एवं सारिकायें अपने अन्य सजातीय विहंगम वर्ग के साथ आनन्द विभोर व्रजजन जीवन-सर्वस्व दम्पति की रसमयी केलि का चित्रण कर रहे हैं अपनी-अपनी भाषा में।

कोकिल का स्वच्छन्द कुहू-कुहू रव वनस्थल को मुखरित कर रहा है। किन्तु उसको कहीं कोई मात्र विहंगम की काकली ही नहीं मानले। ये मयूर जो पंख फैलाकर नृत्य कर रहे हैं, ये पुंस कोकिल और कोकिला पक्षी- सभी सुशिक्षित हैं तुलसी कानन की अधिष्ठातृ देवी से और अभिनव रागिणी के मिस से रानी की परिचारिकाओं को यथावश्यक संकेतदान कर रहे हैं।

रसमयी ने देखा कि ललिता कुंज से सटा उत्तर पूर्व के कोने में एक विलक्षण कुञ्ज है जिसमें सर्वत्र अशोक, सहिजन, अगस्त्य एवं कचनार के वृक्ष पूर्णतया कुसुमित हुए खड़े हैं। इनके कुसुमों के गुच्छों से समस्त कुंज-स्थल की शोभा ऐसी लग रही है मानो इन पुष्प गुच्छों से श्रीदेवी के उरोज विभूषित हो रहे हों। और पारिजात वृक्ष जो इस कुंज के मध्य में स्थित है, इस कुंज की भूमि के वक्षस्थल पर विचित्रता पूर्वक ऐसे रसमय मनोहर चित्र अंकित कर रहा है कि उन्हें देख-देख कर रात्रि में चन्द्रमा भी मुग्ध हो जाता है। इस कुंज की यह विलक्षणता स्पष्ट परिलक्षित हो रही है कि यहाँ के सभी वृक्ष निसर्गत: लता वल्लरियों का दासत्व आचरित करते प्रतीत होते हैं। इसे

कदली के विलक्षण सुन्दर वन ने चतुर्दिक घेर रखा है। यत्र-तत्र आम्र-वृक्षों की निकुंजावलि है और बीजपूर वृक्षों की कुंज पंक्तियाँ हैं। आम्रवृक्षों के निकुंजों के साथ-साथ दाड़िम वृक्ष के भी निकुंज हैं। प्रिया प्रियतम कन्दुक क्रीड़ा करें ऐसी विस्तृत क्रीड़ास्थली भी यहाँ शोभा दे रही है; एवं मणिमय विलक्षण सुन्दर महल हैं।

रसमयी को आश्चर्य हुआ कि कुञ्ज भवन का प्रवेश द्वार स्वतः ही उसके समीप आते ही खुल रहा है। रसमयी सोच रही थी कि क्या उसके आगमन की पूर्व सूचना महल के भीतर पक्षियों ने पहुँचा दी है ? वह यह विचार कर ही रही थी कि उसे मणिमय महल से बाहर निकलती वहीं नव कैशोर से विभूषित द्वार-रक्षिका दृष्टिगोचर हो जाती है।

उसे दूर से देखते ही रसमयी का हृदय अनुराग समुद्र की लहरियों में संतरण करने लगता है। रसमयी को देखकर वह द्वार-रक्षिका भी स्नेह में निमग्न हो जाती है।

रस-समुद्र जब उछाल लेकर विभिन्न दिशाओं में अपनी शत सहस्र ऊर्मियों को प्रेषित करता है, तो उन ऊर्मियों में संवेदन सर्वांश में परिपूरित रहता है। इसलिये जिस माध्यम का वे संस्पर्श करती हैं, उसे वे आत्मसदृश साँचे में ही ढ़ाल देती हैं। भानु किशोरी रानी के अन्तस्तल में विगत आठ पहर से जो रसमयी के प्रति रसोच्छलन हुआ, उसकी ऊर्मियों ने सभी सखी-मंजरियों, एवं रानी की आन्तरिक नर्म परिचारिकाओं के हृदयों को भी अभिभूत कर लिया था। अतः सभी के हृदय उन प्रिया हृदय से प्रसरित ऊर्मियों के प्रभाव से रसमयी के प्रति अगाध आत्मीयता और स्नेह से भरे थे।

रसमयी तो अपने कल के आचरण से व्यथित थी ही परन्तु वह द्वार रक्षिका भी अपनी भावव्यथा से पूरी भरी थी।

ज्यों ही द्वार रक्षिका रसमयी के द्वारा प्रदत्त उपहारों को लेकर रानी के पास पहुँची, उस समय रानी प्राणवल्लभ का चित्र निर्माण करने में तल्लीन थीं। इस नीलोदधि का स्वभाव ही ऐसा है कि जो भी इस उदधि की मात्र एक क्षुद्र सी कणिका का भी संस्पर्श प्राप्त कर लेता है, उसका बाहर निकलना तो सर्वथा असंभव हो जाता है।

चित्र रचना के समय ही सही, किशोरी के नेत्र अपने प्राणधन से चार हो जाते हैं। उन नील देव की बंकिम चितवन को चित्र में उतारते-उतारते ही किशोरी रानी के मर्मस्थल में नीलमयंक देव के बंक विलोचन की पैनी

धार बैठ जाती है। बस उसी के सहारे रानी का मन उस पथ से चलता-चलता डूब जाता है उस नील सौन्दर्य सागर में जहाँ से आजतक कोई बचकर निकल ही नहीं पाया है।

वह द्वार रक्षिका रानी के सम्मुख बार-बार निवेदन करती है रसमयी के इन उपहारों सहित आगमन की वार्ता, परन्तु द्वार रक्षिका को कोई प्रत्युत्तर ही प्राप्त नहीं होता है भानुनन्दिनी की ओर से। आखिर एक ही बात को पुनः पुनः निवेदित करने में तथा प्रत्युत्तर की भी प्रतीक्षा करने में द्वार रक्षिका का काल तो व्यतीत होता ही।

इधर रानी की भाव दशा विलय-बिन्दु की ओर अग्रसर होने लगती है। रानी के प्राणों की यह दशा देखती हुई वह किंकर्तव्य विमूढ़ हो जाती है। पहले स्वामिनी की दशा की सूचना ललिता को देने जाय, अथवा द्वार पर बाहर प्रतीक्षारत रसमयी को सम्हाले, वह निर्णय ही नहीं कर पा रही है। वह अपनी भूल पर भी पश्चाताप करने लगती है। उसे आगन्तुका को स्वामिनी के पास अपने साथ ही ले आना चाहिये था। अब तो इतने विलम्ब तक उसे आसन दान तक न दिये जाने की असभ्यता को वह अपना तिरस्कार मान ही लेगी। और ऐसा मानने में कोई अस्वाभाविकता भी नहीं।

यदि अपने निर्मल साधु स्वभाव वश वह तिरस्कार नहीं भी माने तो भी स्वामिनी के लिये इस प्रकार का अनमोल अनुरागात्मक उपहार लाने वाली के प्रति उसका आचरण तो औचित्य से परे हो ही गया। फिर स्वामिनी निराविल प्रेम का तिरस्कार कैसे सहन कर पावेंगीं। भले ही वे उसे कुछ भी न कहें, परन्तु उनके अन्तर्मानस में उठी इस व्यथा का भार तो उस पर ही होगा। फिर द्वार पर खड़ी आगन्तुका भी अतिशय संकोच शीला है, अन्यथा उसे स्वयं ही उसके पीछे महल के भीतर आ जाना चाहिये था। मनुहार की तो इस प्रेमभूमि में परिपाटी ही नहीं है। परन्तु हाय ! मुझ जड़ बुद्धि ने भी तो उसकी घोर उपेक्षा कर ही दी। वह तो प्रथम ही यहाँ आयी है। उसने साधारण शिष्टाचार वश संकोच का व्यवहार उचित ही तो किया। वह यहाँ की निस्संकोचता को कैसे हृदयंगम करती।

और इस आगन्तुका के प्रति प्राणवल्लभ का अवश्य ही अतिशय स्नेह रहा होगा, तभी न उन्होंने इसके हाथ अपना चर्वित ताम्बूल खंड एवं अपनी वनमाला भेजी थी। इन उपहारों को भेजने में उनका कोई मंतव्य भी रहा ही

होगा ? हाय ! हाय !! मैं तो घोर अपराधिनी ही हो गयी। मेरा व्यवहार तो प्रेम तो दूर रहा शिष्टता की सीमा का भी उल्लंघन कर गया।

इन विचारों में डूबी वह किंकर्तव्यविमूढ़ हो रही थी। अन्ततः उसने यही निर्णय किया कि रानी की उपेक्षा करके भी पहले उसे द्वार पर खड़ी आगन्तुका को सम्हालना चाहिये। यह निर्णय करके वह मुड़ ही रही थी कि उसे सम्मुख रूप मंजरी आती दृष्टिगोचर हो जाती हैं। वह रूप मंजरी को जो कुछ घटित हुआ निवेदन कर देती है।

उस उपहार सामग्री को रूप मंजरी को सौंप कर वह तेजी से द्वार की ओर आती है। परन्तु बाहर आकर पाती है कि आगन्तुका तो वहाँ है ही नहीं। वह अनुमान करती है कि संभव है वह आगन्तुका यहीं आश्र्व-पार्श्व में वन देखने चली गयी होगी। परन्तु पर्याप्त समय प्रतीक्षा करने पर भी जब वह नहीं मिलती तो टोही पक्षियों से उसका अन्वेषण कराती है। कोकिला उसे यही सूचित करती है कि वह तो अतिशय स्नेह भरी डगमगी चाल से यमुना के सम्मोहन घाट की ओर लौटे जा रही है। प्रीत्युद्दीपन की अधिकता से उसकी चाल में गति-भंग दृष्टिगोचर हो रहा है।

द्वार रक्षिका अब पुनः रानी को सम्हालने भीतर जाती है। भानु-नन्दिनी के बढ़ते व्यथा भार को देखते हुए रूप मंजरी ने ललिता को बुला लिया है। ललिता रानी आते ही प्रियतम के द्वारा चर्वित अर्ध ताम्बूल किशोरी रानी के मुख में दे देती हैं। प्रियतम के वक्षस्थल में चर्वित केसर कस्तूरी पंक से लिप्त उनके श्री अंगों की गन्ध से सुरभित वनमाला भी ललिता रानी के कण्ठ देश में झुला देती है। इधर सखियों के प्राणों की बढ़ती चिन्ता भाव धारा भी रानी के हृदय को संस्पर्शित करती है। इन सभी के एक साथ घटित हो जाने से भावसमुद्र की अतल गहराइयों में प्रवेश करती रानी रुक जाती हैं। चित्त विचलित होते ही भाव सन्धि का उन्मेष अनिवार्य हो जाता है।

किशोरी की प्रथम दृष्टि उस द्वार-रक्षिका के आनन पर ही पड़ती है। उसे अश्रुओं से भीगा पाकर रानी में उसके प्रति अतिशय प्रेम उमड़ उठता है।

इसके पश्चात रानी सभी की ओर दृष्टि उठाती हैं, सभी के चेहरों में व्यथा भरी पाकर वे पूर्णतया जाग्रत हो जाती हैं।

वे उन्मुख होती हैं, द्वार-रक्षिका सहचरी की ओर। क्योंकि वही सर्वाधिक प्राणों की व्यथा से भरी थी।

"मनोरमे ! अरी क्या हुआ था मेरे साथ, तुझे सब कुछ खोलकर सुना रही हूँ । देख ! इस चित्र में मैं नवीन परिधान वस्त्रों से सुसज्जित हुई नीली शैवालिनी के तट पर जल भरने ही तो जा रही हूँ। और देख ! यहाँ द्रुम जालों में निलीन मेरे प्रियतम नील सुन्दर कैसी बांकी त्रिभंगी में खड़े हैं। मैं चित्र रचना करती-करती एक टक इस छवि को देखने लगी। सहसा मुझे ऐसा लगा मानो यह चित्र जीवन्त है। बस, मैं तो सर्वथा सुध-बुध ही खो बैठी। भावों की ऐसी आँधी मेरे मानस में आयी कि मेरा सम्पूर्ण अस्तित्व ही उसमें विलुप्त हो गया री। तुझे मेरे कारण इतना कष्ट हुआ - तू मुझे क्षमा कर देना री।

"अरी ! यह वन माला मुझे किसने पहनायी री ? इसमें तो प्रियतम की अंग गंध भरी है ? उनके वक्षस्थल में विलेपित केसर एवं कस्तूरी की सौरभ भी इस वनमाला में लिप्त है। और मेरे मुख में जो ताम्बूल है, यह कौन सखी मुझे खिला गयी है ? यह तो निश्चय ही प्राणसर्वस्व नीलसुन्दर के अधर रस से सिक्त है ? क्या प्रियतम यहाँ आये हैं री ? वे कहाँ हैं ? उन्हें किसने कहाँ छुपाया है ? मेरे प्राण तो उन्हें देखने आतुर हो रहे हैं री ?

रानी की इस उत्कट जिज्ञासा पर मनोरमा उस नव-आगन्तुका के आने और माला तथा चर्वित ताम्बूल भेंट स्वरूप देने की वार्ता तथा साथ ही तुरन्त ही परावर्तित होकर लौट जाने की सभी वार्ता वर्णन कर देती है। साथ ही यह भी स्वीकार कर लेती है कि वह उसे साथ ही लेकर निकुंज में प्रविष्ट नहीं हुई, यह उससे भूल हो गयी।

मनोरमा द्वारा रानी के सम्मुख इस प्रकार हृदय खोल देने और रुद्ध कण्ठ से रानी की आकस्मिक दशा देखने से हुए विलम्ब के कारण नव आगन्तुका के लौट जाने का समाचार सुनकर रानी चिन्ता में पड़ जाती हैं ?

वे मनोरमा को सम्बोधित कर कहने लगती हैं -- मनोरमे ! उस आगन्तुका को निश्चय ही नीलधन ने ही मेरे पास भेजा था। देख ! प्रियतम के अधरों की मधु सुधा इस ताम्बूल में पूरी सिक्त है। और इस वनमाला में कैसे बताऊँ री, मेरे प्राणरमण के श्री अंगों से निःसृत अप्रतिम रस की धारा बह रही है। वह अवश्य ही प्राण सुन्दर की अत्यधिक प्रीति पात्रा है। उसने अपना सर्वस्व नील सुन्दर पर न्यौछावर कर दिया है। उसके अन्तर्जीवन में स्वसुख की गन्ध भी नहीं है, तभी न यह वनमाला प्रियतम के निराविल आनन सरोज को दिग्दर्शित कर रही है। इन उपहारों को लेकर कहीं छद्म

वेश में प्रियतम ही तो नहीं आये थे री ? क्योंकि इस उपहार सामग्री को ग्रहण करते ही प्रियतम मेरे सम्मुख जीवन्त खड़े हो गये हैं। मेरे प्राणनाथ के अतुल सौन्दर्य समुद्र में देख, मैं डूब रही हूँ। मेरा अंग-अंग सर्वथा अवश हो रहा है री।

यह कहते-कहते रानी पुनः बाह्यावेश रहित हो जाती हैं। आठ पहर से प्रिया की यही दशा है, वे बार-बार आगन्तुका गोपी को पुकारती हैं। कहती हैं -- बहिन ! बता ! तू कौन है ? तेरे अंग-अंग तो मेरे प्रियतम के समान श्याम वर्ण हैं। नहीं, नहीं तू गौरवर्णा ही होगी। अवश्य मेरी ही भूल होगी। मेरी निगोड़ी आँखों को रोग लग गया है री। उसे सभी वस्तुएँ श्याम ही श्याम दिखाई पड़ती हैं। बता तो बहिन, तू कहाँ से आयी है ?

अहा ! मेरे प्यारे श्याम सुन्दर की चितवन से घायल होकर तू भी मेरे समान तड़प रही है ? अच्छा बहिन ! तू मेरे पास ही रह। मुझे छोडकर अब कभी मत जाना। हम दोनों एक दूसरी के सामने हृदय खोलकर रोयेंगी, रो-रोकर जी हल्का कर लेंगी। यह कहती-कहती प्रिया फिर मुग्धावस्थ को प्राप्त हो जाती हैं। इस प्रकार प्रिया के गत आठ पहर बीते हैं।

इधर द्वार रक्षिका ज्योंही रसमयी को पुनः आते देखती है तो वह दौड़कर आनन्द में डूबती उसका हाथ पकड़ लेती है। शीघ्रता से तेज गति से आने के कारण रसमयी के मुख पर प्रस्वेद कण मोती की तरह झलमल-झलमल कर रहे हैं। उसकी वेणी तो निर्बन्ध है ही। इतने में ललिता को भी पक्षी सूचित कर देते हैं कि कल वाली आगन्तुका पुनः वैसी ही माला एवं ताम्बूल लेकर निकुञ्ज द्वार पर आ चुकी हैं । वे भी विशाखा सहित धीरे-धीरे चलती हुई रसमयी के पास आ जाती हैं।

ललिता कुछ कपट क्रोध करके रसमयी का हाथ पकड़कर कहती हैं -- "क्यों, क्या कल तूने ही हमारी प्राण-प्यारी रानी को ताम्बूल एवं वनमाला भेंट में दी थी ? क्या तू जादूगरनी है ? हमारी प्राण सखी की आठ पहर से तूने कैसी दयनीय दशा कर दी है ? चलकर देख ? आज फिर कोई नया जादू करने आयी है ? कल की तरह आज भाग मत जाना ? नहीं तो याद रखना मैं ललिता हूँ।" यह कहती हुई वे छलछलाये नेत्रों से रसमयी को कसकर हृदय से लगा लेती हैं। वे इतना कसकर आलिंगन करती हैं मानो उसे अपने हृदय से एक ही कर लेंगी।

और मनोरमा को तो मानो प्राण ही मिल गये ? उसने उसके हाथ कसकर पकड़ लिये हैं ? मानों आज तो जाने ही नहीं देगी ? उसके नेत्रों से इतने आँसू बह रहे हैं कि उनके प्रवाह में उसे रसमयी का मुख दिखना भी बन्द हो जाता है। विशाखा भी रसमयी को आलिंगन करती हैं फिर वे एवं ललिता रानी दोनों किसी अन्य कार्य की त्वरा में हँसती हुई उससे बिदा ले लेती हैं।

मनोरमा उसके खुले केशों पर हाथ फेरती हुई कहती हैं :-- अरी सखी ! कल तू क्यों चली गयी थी री ? मुझ मूर्खा, अभिमानिनी से क्या तू रूठ गयी थी ? अवश्य ही मेरी भूल थी। मुझे उसी समय तेरा हाथ थामकर तुझे निकुञ्ज के भीतर ले चलना चाहिये था। हाय ! मुझसे घोर अपराध हुआ ही परन्तु तू तो अपने आप भी तो मेरे साथ आ सकती थी ? हमारे यहाँ की तो यही नेहमयी परिपाटी ही है। कोई किसी से पूछता थोड़े ही है। यह तो सबका अपना निकुंज है। प्रिया की सब वस्तु सबकी अपनी ही हैं। फिर इसमें पूछना क्या ? परन्तु यह कहकर मैं अपनी भूल अस्वीकारती नहीं। क्या मेरे अति विलम्ब तक नहीं लौटने से तूने अपमान का अनुभव किया ?

रसमयी क्या उत्तर देती ? उसका तो पात्र ही इतना छोटा है कि वह उसमें इतना प्रेम भरने में ही असमर्थ हो रही है। उसका हृदय पात्र इतना छलक रहा है कि वह पूरी की पूरी नहा गयी है।

द्वार रक्षिका कहती जा रही है :-- "अरी बहिन ! जब मैं तेरा हार एवं ताम्बूल खंड लेकर प्रिया के पास जैसे ही पहुँची तो वे प्राणवल्लभ की चित्र रचना कर रही थी।

वे उसमें इतनी तल्लीन थीं कि अनेक बार सूचित करने पर भी उन्हें मेरी बात सुनाई ही नहीं पड़ रही थी। अत: मैं विचार में पड़ गयी। वे भी अकेली थी। ध्यान की प्रगाढ़ एकाग्रता में उन्हें न सँभाला जाय तो कुछ भी अनहोनी उनके साथ घटित हो सकती है। कहीं वे भूमि पर ही लुढ़क जावें। इधर तुझे भी सत्कार-पूर्वक भीतर लाना भी मेरा कर्तव्य था। इस ऊहापोह में समय जा रहा था। इधर मुझे ज्यों ही रूपमंजरी दृष्टिगोचर हुई, मैंने तेरे उपहार उन्हें सम्हलाये और भागी तेरे पास। क्या करूँ ? तब तक तो तू ऐसी विलीन हुई कि मुझ पर तो सेरों पानी पड़ गया। मैंने विचार किया, इधर वन-शोभा देखने चली गयी होगी। परन्तु टोही पक्षी कोकिला ने सूचित किया कि तू तो सम्मोहन घाट की तरफ जा रही है। अरी ! ऐसा मेरा क्या

अपराध था जो तू एक क्षण भी यहाँ नहीं ठहरी। रानी को तो जबसे तेरी उपहार सामग्री वनमाला एवं ताम्बूल खंड से संस्पर्श कराया वे तो तब से ही तेरी ही माला फेर रहीं है। इधर लगभग २४ घंटों से वे प्राय: बाह्य चेतना शून्य रही हैं और जब भी उन्हें बहि:श्चेतना थोड़ी भी होती है तो तेरा ही संस्मरण कर रही हैं।

इतने में ही ललिता एवं विशाखा पुन: आ जाती हैं। वे रसमयी को बायें हाथ से पकड़े रानी के पास ले जाती हैं। विशाखा उसके बांयी तरफ साथ चलती हैं।

ललिता रसमयी को प्रिया की बगल में बैठा देती हैं और संकेत से कहती हैं कि इन्हें तू अपने हाथ से ताम्बूल खण्ड खिला दे। साथ ही यह वनमाला जो प्रियतम ने अपने हाथों गुम्फित की है, इन्हें पहना दे।

रसमयी चुपचाप पास बैठी रानी की विलक्षण भावदशा देखती है। शरच्चन्द्र को भी हेय बनाने वाले उसके सुन्दर मुख चन्द्र के जादू ने रसमयी को रोमाञ्चित कर दिया है। अहा कैसा चित्ताकर्षक अमृतवर्षी मुखमण्डल है प्रिया का। किसी कवि ने ठीक ही कहा है ---

"कर पर धर कपोल बैठी री नयन मूँद"
कमल बिछाय मानो सोयो सुख चन्दा !!

अपने चपल लोचन-युग्मों की बंकिम चितवन से रसमयी रानी को अपलक निहारती है और तब उस अप्रतिम अनिन्द्य सौन्दर्य की साकार प्रतिमा के मुख पर प्रियतम का अर्घ चर्वित ताम्बूल दे देती है। वनमाला पहनाते पहनाते तो रसमयी के नेत्रों से अनर्गल बारिधारा प्रसरित होने लगती है।

रसमयी का कज्जल मिश्रित यह अश्रु-प्रवाह उसके दीप्त अरुणिम कपोलों को आर्द्र कर दे रहा है। रसमयी चाहती है,उसे रुद्ध करना परन्तु किसी भी प्रकार वह रुद्ध नहीं हो रहा है। हाँ ! कण्ठ अवश्य रुद्ध हो गया है उसका। वाणी नि:सृत नहीं हो रही है। सर्वथा विह्वल हो गयी है वह।

रसमयी द्वारा रानी के मुख में ताम्बूल देते ही रानी अपने नेत्र विकसित कर देती हैं। उनके सम्मुख नवागन्तुका का अश्रुसिक्त आनन झलमला उठता है। रसमयी की हृदय की रसधारा गंभीर गंभीरतर होती चली जा रही है। सखियाँ रानी को सँभाले रहकर मुसकाती हुई यह प्रेम लीला देख रही हैं।

देख-देखकर सभी आनन्द में उत्तरोत्तर विभोर होती जा रही हैं। सखियाँ अपने प्यार भरे हाथ से श्री प्रिया की बिखरी लटों को ठीक करती हैं।

रसमयी देखती है --"अहा मूर्तिमान सुन्दरता ! अनुमानातीत सुघड़ता !! निरुपमेय लावण्य !!! अपरिमित कान्ति !!!! रानी के अति सुकुमार चरणों में रसमयी लुढ़क जाती है। ज्योंही रानी के सम्मुख नवागन्तुका का अश्रुसिक्त, चरणों में लुण्ठित होने को उद्यत चेहरा आता है, रानी भावावेश में ही उसे उठाकर अपने वक्षस्थल से चिपका लेती हैं।

"अच्छा बहिन तो तू मेरे पास आ ही गयी। अरी! कबसे मैं तेरी प्रतीक्षा में अपने नेत्र बिछाये थी। अरी बहिना ! किसी अनमोल वस्तु के स्वामित्व को प्रकट करना भयावह होता है री ! उसके छिन जाने की संभावना होने लगती है। इसलिये मैं नहीं चाहती इसे मुख में भी लाना। परन्तु तू वास्तव में मेरी प्रीति-वैभव का अतुल निस्सीम कोष है री। मेरे प्राणों की लालसा है यह बहिन ! तू मेरे पास ही रह। देख री ! मैं तुझे अपनी आँखों की काली पुतरियों में रखूँगी। और जब भी मेरे इस पीत-तन के ग्राहक, मेरे प्राणों के प्राण, प्रियतम नीलमणि मेरे पास होंगे तो मैं अनन्तगुने प्रेम से उन्हें निहार सकूँगी, क्योंकि मेरे नेत्रों में तेरा भी तो वास रहेगा। बोल, तू मुझे छोड़कर नहीं जायेगी न ?

रसमयी रानी की इस व्याकुलता और प्रेमाग्रह को देखकर गदगदाये कंठ से इतना ही कह पाती है -- नहीं जाऊँगी, बहिन ! तू निश्चिन्त रह। इतना सुनते ही किशोरी रानी उसे पुनः दुगने वेग से कंठ से चिपका लेती हैं ?

रसमयी रानी के अचिन्त्य सौन्दर्य, अकल्पनीय माधुर्य, अतुलनीय लालित्य, असीम प्रेममय स्वभाव को देख-देखकर क्षण प्रतिक्षण अधिकाधिक समर्पण से अभिभूत हो रही हैं।

रानी रसमयी को वह चित्र पट दिखाती हैं जो उन्होंने अपने हाथों से बनाया है, वे उसे अपने पास ही पर्यंक में बैठा लेती हैं।

रसमयी चित्रपट को देखती है। अहा ! जीवन्त चित्रण किया है रानी ने। घन कृष्ण कुंचित कुन्तलराशि पर मयूर पिच्छ गुम्फित मुकुटाभरण कैसा फब रहा है। और प्रियतम के श्री अंगों पर ललित तृभंग मुद्रा की अभिव्यक्ति तो देखते ही बनती है। चंचल अरुणिम नेत्रों की चितवन से प्रीति रस का निर्झर झर रहा है। रानी ने प्रियतम का ऐसा सुभग चित्रण किया है कि उसे देखकर रसमयी उनके अतुल सौन्दर्य में डूब जाती है। उसके प्रियतम जितने सुन्दर

इस चित्रपट में दिख रहे हैं वैसे तो उसकी आँखों ने उन्हें साक्षात् रूप में कभी नहीं देखा था। वह विचार करने लगती है। यह क्या रहस्य है ? फिर तत्क्षण ही उसे रहस्य समझ में आ जाता है। रानी का प्रियतम के प्रति प्रेम उसके प्रेम से अनन्त गुना है, इसलिये रानी की प्रेम भरी आँखों ने उनके रूप को भी विलक्षण रूप से आस्वादन किया है, तब उसका चित्रण तो उसके दर्शन से विलक्षण होगा ही। प्रियतम का रूप तो चिन्मय है अतः वह तो प्रेम की तरतमता से घट बढ़ जाता है। जिसकी आँखें जितनी प्रेम में डूबी होंगी, उतना ही प्रियतम सौन्दर्य अभिवर्धित हुआ उसे प्रतीत होगा। और प्रिया ने तो अपनी प्रीति प्रतीति का ही यह चित्रण किया है। कोटि-कोटि कंदर्पों को लज्जा के घन आवरण में आवृत कर देने वाले इस चित्रण को देखकर रसमयी के अंग-अंग अवश होने लगते हैं, वह भाव समुद्र में डूबने लगती है। वह स्वेद से लथपथ हो जाती है। बार-बार उसे रोमाञ्च और कम्प होने लगता है। रानी रसमयी की यह दशा देखकर वह चित्र पट उसके हाथों से हटा लेती हैं और अपनी नील ओढ़नी के छोर से स्वयं रसमयी का स्वेद मार्जन करने लगती हैं। प्रेम से भरी रानी के नेत्र रसमयी की भावगरिमा देखकर छलछला आते हैं।

'कितनी सुन्दर है री तू' रानी उसके मुख की ओर एकटक देखने लगती है। रानी को इतने प्यार से अपनी ओर देखती पाकर रसमयी अपना मुख नीचा कर लेती है। "अरे, अरे आज तेरी केशराशि खुली क्यों है ? तूने वेणी बंध नहीं किया री ? मेरी तो अब तक इन पर दृष्टि ही नहीं गयी। और देख, सच बताना, तेरा श्रृंगार किसने किया है री ? ऐसा श्रृंगार तू स्वयं अपने हाथों कदापि नहीं कर सकती ? तेरे श्रृंगार के अन्तराल में मुझे नीलसुन्दर की प्राणोन्मादिनी मूर्ति अभिव्यक्त होती दिख रही है। तेरे कपोलों पर उनका प्रतिबिम्ब मुझे स्पष्ट दिख रहा है। तुझे स्वयं को पता नहीं है परन्तु मेरी आँखें ठीक देख रही हैं तेरे अंगों से अप्रतिम नीली धारा बह रही है । क्या तुझे लज्जा आ रही है ? अच्छा मत कह ? परन्तु मुझसे उनका प्यार छिपा नहीं रह सकता री। अपने हृदयगत समस्त दुलार से उन्होंने ही तेरा श्रृंगार किया है और तब वे तुझ पर, तेरी प्रीति राशि भरे आनन पर न्यौछावर हुए हैं ?"

मूक अधर रसमयी ने नयनों-नयनों में ही अपनी स्वीकृति दे देती है। और तब वह नयन नीचे करके बैठ जाती है। बहुत ही लजा रही थी वह।

इतने में ही एक विलक्षण चमत्कार होता है। रसमयी का समस्त शरीर घनीभूत होने लगता है और वह सिमट जाती है मात्र एक नीली ज्योति में और फिर वह नीली ज्योति भी घनीभूत होती हुई अति सूक्ष्म होती-होती प्रविष्ट हो जाती है रानी के कपोलों में, ठीक नासिका के पास। और वह परिणत हो जाती है एक मसिबिन्दु के रूप में। और तब उसके मसिबिन्दु में से ही एक अतिशय कोमलांगी गौरवर्णा सखी निकलती है।

सुन्दर , अति सुन्दर, अभिनव सुन्दर, प्रतिपल नव-नव नूतन सुन्दर वह प्रतीत हो रही है। उसके सौन्दर्य की, परम कल्याणमय गुण गणों की मधुरिमा क्षण-क्षण अभिवर्धित होती जा रही है।

प्रतिक्षण नव-नव लीला विलास की अप्रतिम सुन्दर भंगिमा से विभूषित होते रहते हैं उसके अंग-अंग। उसकी गुण-गरिमा नित-नूतन परिवर्धित होती रहती है। उसकी सम्पूर्ण वृत्तियाँ डूबी रहती हैं रासेश्वरी रानी और रासेश्वर प्राणरमण के सुख विलास को सम्पादित करते रहने में ही। उसके उरस्थल में आनन्द की नित्य नवीन-नवीन रस-धारा प्रसरित होती ही रहती है। दो-तीन निमेष का कालमान व्यतीत होते न होते नवीन उमंग की लहरें आत्मसात् कर लेती हैं पूर्व की तरंगों को।

कैसी मनोहर है इसके अलक जाल की शोभा। कमल के सदृश मुख सरोरुह पर कृष्ण अलकावलि झूल रही है। कैसी विलक्षण सुन्दर है इसकी कुञ्चित कुन्तलराशि जिस पर दृष्टि पड़ते ही षट्पद श्रेणी का गर्व चूर्ण-विचूर्ण हो जाता है। लज्जा के घन आवरण में अलिकुल अपना मुख छुपा लेता है। कितने मृदुल अंग संस्थान हैं इसके। यह मृदिमा भी नित्य नूतन होती चली जा रही है। सभी के प्राणों को चरम बिन्दु तक आकर्षित करती है, यह। सौरभ से दिशायें सुरभित हो रही हैं। इसके अंगों में प्रिया-प्रियतम दोनों के अंगों का सम्मिलित सुवास भरा है। इसमें सर्वत्र मादकता पूर्ण है।

प्रिया प्रियतम के अचिन्त्य कृपा के प्रकाश से किसी की घ्राणेन्द्रिय में वह शक्ति आ जाय, तभी कोई समझ सकेगा कि कैसी सरस एवं मादक इसकी अंग गंध है।

इसके झूमते हुए कमनीय नयनों में कैसा अभिनव आकर्षण है। अहा इसके पलक पड़ने की भी कैसी शोभा है। पलकों के गिरने और उठने में इसकी दृष्टि से कैसी रस की अभिनव वेगवती सरिता बह उठती है जो प्राण

सुन्दर को सुख संमुद्र में बहा ले जाती है और रानी को विलक्षण सख्य रस भरी सेवा से आप्यायित कर देती है।

मसिबिन्दु से ज्यों ही इसका उद्‌भव होता है इसे रूप मंजरी गले लगा लेती हैं। अब यह प्राणसखी रूप-मंजरी की सहयोगिनी होकर रानी की नित्य सेविका हो जाती है।

सहसा सूक्ष्मधी सारिका जो रानी की अतिशय प्रेमपात्री है स्वर्ण पिंजर में से बोल उठती है --

"मंजुलीला, मंजुलीला रूप किशोरी रानी की कायव्यूह-रूपा की जय !

अब शुक भी पीछे क्यों रहे, वह भी पुकार उठता है --

"मसिबिन्दूद्‌भवा, मसिबिन्दूद्‌भवा वृन्दावन-चन्द्र की प्राणप्यारी की जय ! मंजुलीला रूप रसमयी-परिणति की जय,जय !!

इस जय जयकार से रानी एवं ललिता विशाखादि सभी सखियों के मुख पर हँसी आने लगती है।

शुक एवं सारिका दोनों बोल उठते हैं -- महाप्लावन ! देखो ! देखो !! कलिन्दनन्दिनी की ओर तो देखो ! आज वह महारससिन्धु हो उठी है। वह यमुना तटवर्ती निकुंज, वह तो कभी का डूब गया। वह बिचारा वट वृक्ष, उस निकुंज के द्वार पर जो स्थित था, कुछ काल तक प्रवाह से जूझता रहा, अन्त में वह भी डूब ही गया। वे मनोरम घाट सब डूब गये। वह भग्न सी रसमयी की कुटिया भी बह गयी। और आश्चर्य यह रससमुद्र इतना उमड़ा कि महाभावद्वीप इस निकुंज के भी द्वार खटखटाने लगा। इन द्वारों के सन्धिस्थलों से प्रविष्ट होकर रसमयी को भी चूर्ण-चूर्ण कर अपने में उसके अवशेषों को घोल लेता है और तब उसे अपने से एकात्म कर स्वयं रानी के छोटे से मसिबिन्दु में समा जाता है। उसमें प्रविष्ट होकर समाहित हुआ स्वयं को रानी में विलीन कर देता है।

रानी के इस मसिबिन्दु की जय, जय सदा ही जय हो।

शुक एवं सारिका दोनों जयकार कर उठते हैं :--

मसिबिन्दु विलया रसमयी की जय ! मसिबिन्दूद्‌भवा मंजुलीला की सदा ही जय हो।

पुनः दोनों साथ ही साथ बोल उठते हैं।

महाभावसिन्धु स्वरूपा नित्य निकुञ्जेश्वरी की जय !

महारससिन्धु प्रियतम नित्य निकुंजेश्वर की सदा ही जय हो !

मंजुलीला भाव
वनमाला गुम्फन लीला

व्रजेन्द्रतनय की अनाविल लीला रसपान एवं रसदान की मधुरिमामय अभिसन्धि को लेकर ही अघटन-घटना-पटीयसी-योगमाया निर्माण करती है अखिल रसामृत सिन्धु व्रजराज कुमार के विहार स्थल व्रजपुर का। शब्द नहीं हैं जो व्रजपुर की विभु-रसराशि को व्यक्त कर सकें। उसके महाभाव महिमा मंडित स्वरूप को भाषा में बाँध देना सर्वथा सर्वांश में असंभव, पूर्णतया असंभव है। प्रियतम नीलमणि और उनकी प्रिया महाभावमयी राधारानी की यह नित्य आवास-स्थली जो ठहरी। प्रीति अपनी समस्त गरिमा के साथ यहाँ इसी प्रदेश में मूर्त होती है। और इसीलिये व्रजेशतनय वृन्दाकानन का परित्याग कर अन्यत्र नहीं जाते । अतः नित्य नवीन-नवीनतर रसमय ही होती रहती है यहाँ की भूमि।

अहा ! रस तरंगिणी यमुना के पुलिनों की सौन्दर्य राशि प्रतिक्षण नित्य नूतन विस्तार को पा रही है। ऋतुराज वसन्त यहाँ अपनी पूरी सेना के साथ सर्वत्र एवं सब समय सेवा में उपस्थित है। शीतल मन्द मलय मारुत तो प्रियतम नीलमणि की परिक्रमा ही करता रहता है और उनके आदेश से श्वास लेने वाले लघुत्तम कीट से लेकर विशालकाय वन-गजराजों तक सभी के प्राणों में प्रियतम नीलमणि का रस संदेश भरता रहता है और उनके चरणों में सभी प्राणियों की भाव कुसुमांजलि अर्पित करता रहता है।

देखो ! यह तरुश्रेणी जो तुम्हें दृष्टिगोचर हो रही है इन्हें भूलकर नन्दन कानन की पारिजात-पादप-श्रेणी मत समझ लेना और न ही ये सर्वत्र रस-सुरभि दान करती लतायें सुतल तथा पाताल लोक से आनीत हैं :-- ये सभी तो नन्दतनय एवं प्रिया रानी की कायव्यूह स्वरूपभूता सन्धिनी शक्ति वृन्दा की ही इन रूपों में परिणति हैं। सुमनों का दिव्य प्राणोन्मादी भाव सौरभ, मधु लुब्ध असंख्य कृष्ण भ्रमरों का रसपूर्ण गुञ्जन, और मकरन्द रस-पान, उनका भाव-भरे रंग-बिरंगे सुमनों पर अति सरसता पूर्वक आसीन होना - इन सभी के अन्तराल में सर्वथा सर्वांश में मूर्त है, रानी की स्वरूपभूता संघिनी का विलास ही।

यहाँ निसर्ग का भोग्या होना ही अविचल नियम है। यहाँ सभी व्यक्ति नन्दनन्दन की सेवा के लिये समर्पित हैं, चाहे वे महाराजा वृषभानु हों, श्री गोपराज नन्दराय हों, अथवा साधारण सा साधारण अंत्यज जाति का चाण्डाल हो। वह अपने स्व के लिये जीवित ही नहीं है, वह तो मात्र नन्दनन्दन सुखी हों, उनका सुख मेरे द्वारा कैसे सम्पादित हो, इसी भावना से जीवित है। यहाँ की सब वस्तुएँ नन्दनन्दन के लिये एवं सब परिस्थितियाँ भी हैं नन्दनन्दन के सुख-प्रदाह को नित्य नवनवायमान उच्छलन देने के लिये ही।

देखो ! आज कुछ विलक्षण दृष्टिगोचर हो रहा है। तरुश्रेणियों में आसीन ये पक्षीगण प्रतिदिन तो नाम-गायन करते हैं, नीलमणि प्रियतम श्यामसुन्दर का अथवा प्रिया राधारानी का, परन्तु आज तो इनमें कुछ परिवर्तन है। ये कोकिल, मोर, पपीहा, कपोत, फुदकती कृष्ण चिरैया, नाचती प्रसन्न होती नवीन नाम उच्चारण कर रही हैं। आओ, तनिक ध्यान लगाकर इन्हें सुनें।

अरे ये तो नामोच्चारण कर रही हैं :-- मंजुलीला , मंजुलीला ! और यह दूसरा नाम तो अतिशय क्लिष्ट है। परन्तु देखो, पक्षीगण कितनी सरलता पूर्वक इसे भी नाच-नाचकर उच्चारित कर रहे हैं। इन्हें "मसिबिन्दूद्भा मसिबिन्दूद्भा इतने क्लिष्ट उच्चारण में भी कहीं कोई आयास, क्लेश, अथवा दुरूहता नहीं प्रतीत हो रही है। और इस गायन के साथ ही चतुर्दिक् वन में सौख्य की, सौन्दर्य की, माधुर्य की, सरसता की एवं सौरभ की अभिनव उच्च लहरों पर लहरें उठने लग रही हैं।

अरे देखो ! यह सौन्दर्य की साकार प्रतिमा कौन है, जो राधा-विहार-सरोवर की राह से आगमन करती घने वन में अकेली निर्भय प्रवेश कर रही है। इस घने वन में व्रजरमणियाँ पुष्पचयन करने आती हैं अवश्य, परन्तु अकेली तो कदापि नहीं प्रवेश करतीं, वे सभी दो-चार, पांच-सात के यूथ में ही इस घने वन में प्रवेश करती हैं। परन्तु यह तो प्रभात होने के पूर्व ही अकेली वन-प्रवेश कर रही है, महती आश्चर्य है।

अरे ! विलक्षण सुन्दरी है यह ? पंच तत्वों से तो इसका कलेवर निर्मित ही नहीं है। इसका न तो साम्य है देवांगनाओं से, न ही नागलोक की कुमारियों से। इसकी तुलना तो लक्ष्मी, ब्रह्माणी, एवं पार्वती से भी नहीं की जा सकती। सत्यलोक, तपोलोक, महर्लोक, जनलोक, स्वर्लोक सबका तेज इसके सम्मुख फीका पड़ रहा है। अरे भाई ! इसके तो दर्शन मात्र से प्रपञ्च स्वत: स्वाभाविक विलुप्त हो रहा है। वैसे ही जैसे रवि के उदय होते ही स्वत:

अन्धकार विलुप्त हो जाता है। क्या ही विलक्षण प्रभाव है इसका ? आओ, इस पुष्पित कदम्ब वृक्ष के नीचे चलें। इस वृक्ष की डाली पर ये पक्षी युगल शुक एवं सारी कुछ रसमयी गंभीर रहस्यमयी वार्ता कर रहे हैं। इन्हें सुनें।

यह सारिका कह रही है :-- हे शुक ! मैं इस मंजुलीला की पूरी वार्ता बता रही हूँ। यह किस पदार्थ से निर्मित है और इसका अन्तर्हृदय कैसा है ? ध्यान से दत्तचित्त होकर सुनना भला ?

"हे बन्धु ! तुमने कभी न कभी व्रजेन्द्र नन्दन के काले कजरारे नेत्र तो देखे ही होंगे ? कैसी मादकता भरी हैं उनमें, साथ ही कैसी निर्मलता भी है। उन कजरारे नेत्रों की रसमयी कालिमा से इस मंजुश्यामा की कुञ्चित केशराशि इसकी कांचन वर्णीपीठ पर लहराती कैसी सुन्दर लग रही है। अप्रतिम अतुलनीय है इसकी शोभा।

और बन्धुओं ! कोटि-कोटि शशधरों को अपनी कान्ति से हतप्रभ कर देने वाला नीलमयंक देव का लावण्य भरा मुखमण्डल तो तुमने नयन भर निहारा ही होगा। हाँ, तो उसी शोभा को पदार्थ बनाकर अतिशय प्यार और भावावेश के क्षणों में नीलमणि एवं राधारानी ने अपने हाथों इसके अंगों अंगों की बहुत ही मनोयोगपूर्वक रचना की है। इसीलिये इसके मुखमण्डल का लावण्य, मधुरिमा, सरसता, कोमलता, और कान्ति सभी अवर्णनीय है।

और इसके कजरारे, कानों तक दीर्घ, तीखे नेत्रों की ओर तो देखो ! हरिणियाँ लजा कर मुख फेर रही हैं, कैसी अनुपम रसमयता निखर रही है इसके अन्तराल से। इसके इन रसभरे नयनों की अभूतपूर्व शोभा का रहस्य पता है तुम्हें ? नहीं तो सुनो। परम प्रेमास्पद प्राणसारसर्वस्व नीलमणि इसके नेत्रों में आठों पहर निवास करते हैं। तभी न सम्पूर्ण प्राणि-पदार्थ इसे मात्र प्राणवल्लभ ही प्राणवल्लभ दृष्टिगोचर हो रहे हैं। यह विश्व प्रपंच को सर्वथा सर्वांश में विस्मृत कर गयी है। इसकी रसमयी अनुभूति सुन लो। यह देख रही है कि इसके प्राणवल्लभ नीलसुन्दर और प्राणप्रिया राधारानी के नील-पीत-द्युति चरण सरोरुहों में जो विजड़ित बीस नखमणियाँ हैं और उनसे जो अनाविल प्रीति प्रकाश निरन्तर निःसृत हो रहा है, वही घनीभूत होकर उपल बन गया है, वही अनन्त असीम नभ बना सबको अवकाश दे रहा है, वही रवि और शशि, अग्नि तथा अनन्तानन्त नक्षत्र मण्डल बन गया है। वही सप्त सागर के रूप में लहरा रहा है। वही प्राण बन भूः, भुवः, स्वः, महः, तपः, जनः एवं सत्यलोक तक के ऊर्ध्व लोकान्तरों के और तल, वितल, अतल,

सुतल, तलातल और पाताल तक के अधः लोकों के जीव समुदाय की श्वास प्रश्वास बन सबको जीवन्त कर रहा है, वही इन लोकों की विघ्न-बाधा-शून्य अनन्त सम्पदा है और वही इनमें अविद्या जनित देहाभिनिवेश कराता हुआ इन्हें जन्म-मृत्यु के अनन्त प्रवाह में भटका रहा है। भाई ! कैसी पावन सत्य दृष्टि है इसकी। इसे नीलसुन्दर के सिवा किसी अन्य की सत्ता दिखती ही नहीं। इसीलिये इसका रागद्वेष शून्य चित्त एकरस सर्वत्र सभी को अपना अगाध एवं निर्बाध एक रस प्रेम प्रदान कर रहा है। देखो शुक ! इसीलिये वन प्रान्त के पक्षी समुदाय के रूप में ही नहीं, कान लगाकर सुनो, व्योम, वायु, तेज, जल एवं धरा का अणु-अणु बने प्रियतम प्राणवल्लभ ही अतिशय प्यार से इस महा सौभाग्यवती देवी का नाम संकीर्तन कर रहे हैं -

मंजुलीले, मंजुलीले, मंजुलीले, मंजुलीले।

देखो ! यह परम सत्य इस देवी से अप्रकट थोड़े ही रह सकता है। इसे ठीक अनुभव हो रहा है समग्र वन में आत्मगोपन कला-प्रवीण उसके प्रियतम ही प्रेमजन्य विकलता के अतिरेक में उसका निरन्तर नाम जप रहे हैं। और इसीलिये मंजुलीला के दीर्घ सरसिज नेत्रों में प्रेमाश्रु-छलक आये हैं, शुकराज !"

तो लो, सारिका से इस देवी का परिचय तो मिल गया। अब इसके पीछे चलें, यह इस वन में क्यों आयी है ?

अवश्य ही यह यहाँ आयी है वन के सर्वोत्तम गन्धवाही पुष्पों का चयन करने। प्राणप्रिया राधा ने आज जीवन में प्रथम बार ही तो उसे यह पुष्पचयन की सेवा दी है। वह अपने हाथों अति सुन्दर सुगन्धित पुष्पों का चयन करेगी और तब उन्हें वृन्तों से कलापूर्ण रीति से गूँथकर सुन्दर पुष्पहार निर्माण करेगी और तब उस पुष्पहार को प्राणप्रिया प्रियतम श्यामसुन्दर को पहना देंगीं।

लो मंजु ने वन प्रदेश में चारों ओर दृष्टि घुमायी। वृक्षों-वृक्षों में आच्छादित लताएँ सुगन्धित कुसुमों के अम्बार लगाये उसे संकेत कर रही हैं। बहिन ! हमारे पास आओ न ! कुछ भी आयास की आवश्यकता नहीं, मात्र आँचल भर फैला लो, हम अभी तत्क्षण उसे पुष्पगुच्छों से परिपूरित कर देंगीं। देखो ! इन वृक्षों को अपनी सुकोमल सहस्त्रों भुजाओं से पूर्णरूपेण आलिंगित किये ये लताएँ कोई लाल, कोई पीली, कोई नीली कोई अनेक रंगों की मिश्रित, कोई पीली और लाल मात्र दो रंग की और कोई लाल, पीली, बैंगनी

तीन रंगों की पुष्प सज्जा धारण किये उसे अतिशय प्यार से आमंत्रण दे रही हैं। "आओ न बहिन ! मेरे पुष्प लो न, मैं ये इतनी सुन्दर पुष्पसज्जा धारण किये युगों-युगों से अति आकुल चित्त से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूँ -- मुझे सफल मनोरथ कर दो न ? मेरा रोम-रोम तुम्हारा अभिनंदन कर रहा है, अच्छा पुष्प मत लो, दो क्षण मुझे तुम्हारा प्रेमरस से ओतप्रोत किञ्चित् स्पर्शदान ही कर दो, और यह भी तुम्हारी रुचि के विपरीत हो, तो दो क्षण हमारी शीतल छाया में विश्राम ही कर लो न बहन ? निर्निमेष नेत्रों से वृक्ष-वृक्ष अपनी प्यारी सखी मंजुलीला को आकुल प्रेम निमंत्रण दे रहा है।

लो, एक भाग्यवान वृक्ष के नीचे खड़ी हो मंजुलीला ने अपनी आँचल निर्मित झोली फैला दी और क्षण भी नहीं हुआ और वृक्ष से लिपटी लताएँ अति सुरभित प्रस्फुटित पुष्पों की वर्षा करने लगीं। इन पुष्पों के सौरभ से समग्र वन मुखरित हो उठा।

अहा ! कैसी मुग्ध भावापन्ना है यह बाला मंजुलीला। इसका अंग-अंग नवतारुण्य से छलक रहा है। उसकी तरुणाई कोटि-कोटि अनंग मदहारी है। उसकी घुँघराली अलकावलि, कंदर्प-धनु सी बंकिम भौंहे, शुक-चंचु-तिरस्कारी नासिका, दमकते सुकोमल कपोल, बिम्ब के समान लाल-लाल अधर, कोमल किसलय से कान, रक्तपद्म से हाथ, गोल-गोल कलाइयाँ, रति को स्पर्धा में पराजित करती कमनीय भुजायें, ये उत्तुंग उरोज, ग्रीवा की गति, नेत्रों की चंचलता, भ्रू-नर्तन, पदविन्यास, उसका अभिनव सुन्दरतम रूप देखकर वन श्री भी लज्जा से अवनत मुख हो जाती है। वनश्री दूती बनी दौड़ी-दौड़ी नन्दनन्दन के कानों में चुपचाप संकेत दे देती हैं। आओ ! प्राणप्यारे अपने नेत्रों की रूप-दर्शन की तृषा बुझा लो न ? वनश्री के उरस्थल में उठती भावलहरियों का समर्थन नर्तन करता हुआ सुरभित समीर भी कर देता है। चिरकाल का वही तो नन्दनन्दन का सर्वप्रिय विश्वास पात्र दूत है। "हे मेरे प्राणधन ! तुम्हें आकुल हृदय से रानी की एक प्राणसेविका का यौवन पुकार रहा है। उसे अपनी दृष्टि से सार्थक कर दो न नाथ।

लो ! प्राणवल्लभ श्रीकृष्णचन्द्र के अधर पल्लवों में अनुमोदन भरी मधुरातिमधुर रसमयी स्मिति नाच उठी। और उन्होंने एक अतिशय प्रीति गरिमा से भरा खेल करने का संकल्प कर लिया। वनश्री और समीर दोनों कृतकृत्य हो गये। प्रियतम के नयन-चंचरीक मंजुलीला के वदन-सरोज के सौन्दर्य का रसपान करने समुत्सुक हो उठे। और लो, प्रियतम ने अपने को

व्यक्त कर दिया, वहीं उसी वृक्ष के पार्श्व में, एक सुमन लतिका की ओट में, जहाँ मंजुलीला वनमाला गुम्फन कर रही थी।

देखो ! प्रियतम की कैसी शोभा है। इन्द्रनीलद्युति अंग संस्थानों पर विराजित पीत परिधान, ललिततृभंग गात्र, इनके दर्शन मात्र से वन का अणु-अणु आनन्द में परिपूरित हो उठा। उनके श्रीअंगों की मधुरिमा भरी आभा से वन में सर्वत्र ओरछोर विहीन सुषमा बिखर उठी।

प्रियतम सतृष्ण निरख रहे हैं अपनी प्रिया मंजुलीला की पुष्पमाला गुम्फन करती मुग्ध मुद्रा को। प्यार की कूल विहीन स्रोतस्विनी उमड़ रही है, प्रिय के हृदय में। स्नेह का आपार वैभव अविराम वितरित होने लगा स्वतः प्रियतम के चंचल नयनों से। उनका नील कलेवर प्यार के समुद्र की तरह लहराने लगा और संविन्मय आनन्द छलकने लगा उनके रोम-रोम से।

प्रियतम के कमल जैसे दीर्घ नेत्र उस छलकते प्यार से भरे टप-टप अश्रु टपकाने लगे।

परन्तु महारस की आगार मंजुलीला तो मानो मधुपूर बनी दत्तचित्त हो वनमाला गूँथने में लगी है। उसे पता ही नहीं है कि उसके प्रियतम कोटि मदन-मदहारी उसकी रूपराशि का अतिशय तृष्णा से नयन-प्यालों में भर-भर कर पान कर रहे हैं। और अप्रतिम प्रीति के ये दो निर्झर प्रियतम श्यामसुन्दर और प्यारी मंजुलीला सारे वनक्षेत्र को अपने प्रेमरस से सराबोर कर दे रहे हैं।

प्रियतम सरक कर शनैः शनैः मंजुलीला की पीठ के पास ही आ गये। मंजुलीला के मस्तक पर प्रियतम के बरसते नेत्रों की अश्रुधारा अभिषेक करने लगी। यह अश्रुधारा उसकी उन्मुक्त केशराशि का सिंचन करती उसके कंचन गात्र और रक्ताभ कपोलों पर भी बहने लगी फिर भी मंजुलीला यही जान रही है कि लताओं में संचित ओसबिन्दु रवि-किरणों के प्रसार से चू रही हैं, और वे ही उसके मस्तक को भिगो रही हैं।

वह माला गूँथती ही जा रही है। सुमन जैसे ही समाप्त होते हैं, सुमन लतिका पुनः पुष्पवर्षा कर देती है और माला गुँथती हुई दीर्घ, सुदीर्घ होती चली जा रही है। उसके नेत्रों के सम्मुख है उसके प्राण प्रियातम की मानस छवि। स्निग्ध नयनों की मधुमयी अविरल धारा से वह अपने प्रियतम को पाद्य समर्पित कर रही है। उनके पाद पद्मों में वह अपने प्रेमाश्रुओं से ही उर्घ्य, आचमन स्नान, सभी करा रही है। यह पावनतम प्रीति जलधारा ही तो उसका

एक मात्र धन है। इन अश्रुकणों की मुक्ताओं के मोल पर ही तो वह रानी के आश्रय को प्राप्त कर सकी है। उसके पास इनके सिवा अन्य कुछ भी नहीं है। अपने प्रिय की प्रगाढ़ स्मृति में वह सर्वथा भूल गयी है अपने आपको। पूर्व संकल्पानुसार यंत्रवत् हाथ स्वतः माला पिरोते जा रहे हैं। उसे काल मान का तो ज्ञान ही नहीं है।

वह सूर्योदय से पूर्व ही रानी के आदेश से पुष्प चयन करने आयी थी और अब तो दुपहरी भी व्यतीत हो गयी है। रानी नन्दभवन से पाक-रचना कर लौट भी आयी हैं। उन्हें उसकी स्मृति ने विह्वल कर दिया है। अब तो ललितादि सखियाँ सूर्य पूजन के लिये प्रस्थान को उत्सुक हैं। निरे प्रभात गयी मंजुलीला का कुछ पता नहीं। कहाँ अदृश्य हो गयी वह। रानी सखियाँ सहित उसे ढूँढने वन में चली आयी हैं। और पक्षियों ने राह दिखायी है उस मणिमय प्रांगण की।

अहा क्या ही प्यारी छवि रानी के सम्मुख है। वृक्ष पर बैठी सारिका जोर से चीख-चीख कर कह रही है --"बताओ तो सही, नील सुन्दर जैसा सच्चा स्नेह देने वाला भला कोई दूसरा है क्या ? ऐसी प्रीति क्या अन्यत्र संभव है ? देखो ! देखो !! मंजुलीला की रुचि का आदर करते हुए प्रियतम ने अपने को गुँथी माला से कैसा लपेट लिया है? ऐसा अन्य कौन है, जो किसी के प्रीति भरे मन की इस प्रकार साध पूरी करे ? इन्होंने अपने इन्द्रनीलद्युति सम्पूर्ण अंगसंस्थान, अपना सम्पूर्ण गात्र, अपना मयूरपिच्छ-गुम्फित-मुकुट, अपनी कुन्तलराशि, अपनी ग्रीवा, अपना विशाल स्कंधदेश, अपनी भुजायें, अपना वदन सरोज, अपने कर्ण-कुण्डल, अपना कटिदेश, सुन्दर उदर, नितम्ब और जंघाएँ और चरण सरोज सभी तो मंजुलीला द्वारा गुँथी माला से लपेट लिये हैं फिर भी मंजुलीला को अपनी वनमाला गुंथनलीला से विराम कहाँ ?"

अपने को आपाद मस्तक सुरभित माला में लपेटे नीलमयंक देव मंजुलीला को अपने अश्रुओं से नहला रहे हैं परन्तु उसे बाह्यज्ञान ही कहाँ ? यंत्र चालित से उसके हाथ माला गूँथने का कार्य यथावत् पूर्व अभ्यानुसार करते जा रहे हैं।

रानी कुछ क्षण चमत्कृत सी अपने प्रियतम की छवि देखती हैं और तब मंजुलीला को बाह्य आवेश कराने की चेष्टा करती हैं। रानी के साथ आयीं ललिता, रूप मंजरी, एवं मंजुश्यामा आदि इस प्रीति छवि पर विमुग्ध हो रही हैं।

रानी उसे सम्बोधित कर कहती है -- "मंजूरी, तू तो निरे प्रभात निशान्त में ही पुष्प चयन करने गयी थी, क्या तेरी वनमाला ही अब तक नहीं गुँथी ? देख री, सूर्य पश्चिम की ओर मुख कर चुके, उठ, न ?

मंजुलीला को अब बाह्यज्ञान होता है। वह प्रिया के कण्ठ से लग जाती है ? और मालाओं में गुँथे इन नील मयंकदेव को अपने पास ही खड़ा देख अति लज्जा से भर जाती है। वह मन ही मन जिज्ञासा करती है कि यह सब क्या खेल हो गया है ?

और सारिका चीख उठती है --

एषांतु भाग्य महिमाऽच्युत तावदास्तामेकादशैवहि वयं बत भूरिभागाः
एतद् हृषीकचषकैरसकृत् पिबामः शर्वादयोंऽघ्र्युदजमध्वमृतासवं ते।

हे अच्युत ! इन व्रजवासियों की सौभाग्य की महिमा तो अलग रही, इनके मन आदि ग्यारह इन्द्रियों के अधिष्ठातृ देवताओं के रूप में रहने वाले महादेवादि हम लोग भी बड़े ही भाग्यवान् हैं क्योंकि इनकी मन आदि ग्यारह इन्द्रियों को प्याला बनाकर हम आपके चरण कमलों का अमृत से अधिक मीठा, मदिरा से भी मादक, मधुर मकरन्द पान करते रहते हैं। जब उसका एक-एक इन्द्रिय से पान कर हम लोग धन्य हो रहे हैं तो अपनी समस्त इन्द्रियों से उसका सेवन करने वाले इन व्रजवासियों की तो बात ही क्या है ?